सं. सुदर्शन चोपड़ा

सूरदास

परिचय तथा रचनाएं

हिन्दी के लोकप्रिय भक्त कवि

सूरदास

"कल्याण करें कन्हाई तिहारा।"
सूरदास के टटोलते हुए हाथ आशीर्वाद
देने के लिए फैले।
उनके पैरों पर अपना सिर झुकाए
बैठी थी चिन्तामणि।
फुसफुसा पड़ी अनायास ही,
"लुनाई के प्रति अनन्य प्रेम को कन्हाई की
अनन्य भक्ति में परिवर्तित पा मैं धन्य हो गई।"

एक गणिका ने जिस साधारण व्यक्ति को
महाकवि बना दिया था, उसी महाकवि सूरदास के
महान जीवन की मार्मिक झांकियां
प्रस्तुत हैं इस पुस्तक मे।
इन्हें लिखा है हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार
सुदर्शन चोपड़ा ने।

साथ ही प्रस्तुत है सूरदास के अमर पदों में से
चुने हुए अत्यन्त लोकप्रिय पद।
जैसे—'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो',
'मधुकर स्याम हमारे चोर',
अंखियां हरि दरसन की प्यासी'
आदि।

सन्त-भक्त-कवि माला

• कबीर	सुदर्शन चोपड़ा
• तुलसीदास	सुदर्शन चोपड़ा
• सूरदास	सुदर्शन चोपड़ा
• मीरा	सुदर्शन चोपड़ा
• सन्त नामदेव	डॉ. प्रभाकर माचवे
• सन्त एकनाथ	डॉ. प्रभाकर माचवे
• गुरु तेग बहादुर	डॉ. महीप सिंह
• गुरुनानक	डॉ. महीप सिंह
• शैख़ फ़रीद	डॉ. हरभजन सिंह
• बुल्लेशाह	डॉ. हरभजन सिंह

सभी पुस्तकें हिन्द पॉकेट बुक्स से उपलब्ध

Bhakta kavi S.rad.sa /

2004.
33305200165110
1a 11/15/06

भक्त कवि

सूरदास

TITLE : Bhakta Kavi Sūradāsa /
AUTHOR STAT : saṃ., Sudarśana Choparā.
EDITION STAT : Navīna saṃskaraṇa.
IMPRINT : Naī Dillī : Hinda Pôketa Buksa, 2004
NATURE_SCOPE : Poems.
LANGUAGE : In Braj; introductory matter in Hindi.
D.K Agencies (P) Ltd.
www.dkagencies.com
DKHIN-18883

सं. सुदर्शन चोपड़ा

हिन्द पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स
भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

उत्कृष्ट साहित्य का प्रतीक
सुन्दर • सुरुचिपूर्ण • सरल

सूरदास (परिचय तथा कविताएं)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

नवीन संस्करण : अप्रैल, 2004
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जे-40, जोरबाग़ लेन, नई दिल्ली-110003
लेज़र : विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रक : नाईस प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-110051

SOORDASS
Edited by Dr. Sudarshan Chopra

ISBN 81-216-0969-0
04/04/01/04/21/VC/SAP/NPP/MBB

क्रम

जीवन-कथा	7
सूरदास के भजन	25
भ्रमर-गीत	109
अनुक्रमणिका	131

Digitized by the Internet Archive
in 2022 with funding from
Kahle/Austin Foundation

https://archive.org/details/isbn_8121609690

जीवन-कथा

"कौन?" हड़बड़ाकर उठ पड़ी वह।

झिंझोड़कर जगा दी जाने से पक्की नींद टूट जाने के तुरन्त बाद की नीम-सुधि में पलकें झपक-झपक खोलने का प्रयास कर रही थी वह।

"म...मैं...मैं हूं चिन्ते!" अपने होने का विश्वास दिलाते-से स्वर में कह रहा था वह। आवाज़ द्वारा पहचनवाना आवश्यक था उस समय; क्योंकि जानता था, हुलिया पहचाने जाने योग्य नहीं रह गया। सिर से पांव तक कीचड़ से लथपथ था।

"अरे! ... तुम!! ... इस हाल में और इस वक़्त!!!" एक ही सांस में कह गई थी वह। पर इतने-से शब्द बोलने में ही हांप गई थी। आश्चर्य-मिश्रित चिन्ता के आकस्मिक दबाव से नसें तन आई थीं। कुहनी के बल बिस्तर में अधलेटी चिन्तामणि के अस्त-व्यस्त परिधान और सहसा त्रस्त हो आई मनःस्थिति को देखकर दुखी स्वर में बोल उठा, "असमय आकर तुम्हें परेशान किया। लज्जित हूं चिन्ते! पर..." तत्काल बाद ही आत्म-कातरता में पिघल गया था उसका स्वर, "मैं मजबूर हो गया था...कोई चारा न था...न आता तो भीतर-ही-भीतर छटपटाकर मर गया होता!" जबड़े भिंच आए थे उसके और गला रुंध गया था।

चिन्तामणि इस बीच संभल चुकी थी। स्थिति को कुछ-कुछ समझ भी गई थी। अतः अपने प्रेमी की मनःस्थिति ठीक करने से भी पहले उसे चिन्ता हो आई थी उसकी तनःस्थिति संभालने की।

वह एक झटके से उठ खड़ी हुई। अलगनी पर टंगा तौलिया उठा लाई।

वह एक झटके से उठ खड़ी हुई। अलगनी पर टंगा तौलिया उठा लाई। अपने हाथों से उसका कीच-सना बदन पोंछने लगी। भीगे कपड़े उतरवाकर स्नानागार में फेंके। नई धोती-कुर्ता और शाल आदि पहनवाकर उसे बिस्तर में लिटा दिया। फिर अंगीठी जलाई। कमरे की खिड़की खुली देखी तो उसे बन्द कर आई।

"इसी खिड़की के रास्ते आए थे तुम?"

"हां चिन्ते!"

"पर यह तो ऊपरी बारजे में खुलती है और इस बारजे का नीचे से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। आख़िर तुम ऊपर पहुंचे कैसे? मुख्य द्वार से सीढ़ियां चढ़कर क्यों नहीं आ गए?" अचरज में पड़ गई थी चिन्तामणि।

"मुख्य द्वार बन्द था। बड़ी देर तक खटखटाता रहा। जब किसी ने नहीं खोला तो पिछवाड़े आ गया। तुम्हारे कमरे के साथ लगे बारजे की मुंडेर से लटकता एक लम्बा रस्सा दिखाई पड़ा। बस उसे ही पकड़कर चढ़ आया।"

"रस्सा!"

"हां। मैंने तो समझा, शायद तुम्हीं ने लटका रखा होगा मेरे लिए।"

"पर मैं क्यों लटकाती? और फिर मुझे क्या पता था कि तुम इस तूफ़ानी रात को ऐसे ग़ैर-वक़्त आ जाओगे, सो भी इस हालत में!...पर देखूं तो वह रस्सा..." कहती हुई वह बारजेवाला दरवाज़ा खोलने लगी। दरवाज़ा खोलकर जैसे ही उसकी नज़र बारजे की मुंडेर पर पड़ी, वह चीख़ पड़ी।

"अरे! क्या हुआ?" हड़बड़ाकर उठ पड़ा वह भी। लपककर बाहर जा पहुंचा।

रह-रहकर बिजली चमक रही थी और घन-गर्जन के भयावने शोर में वह तूफ़ानी रात प्रलय का पूर्वाभास देती लग रही थी।

"इसे ही तुम रस्सा समझकर इसी के सहारे चढ़ आए थे बिल्वमंगल?" अविश्वसनीय किन्तु सत्य का सांटा खाई मनःस्थिति में पड़कर एक विचित्र-सी आत्मग्लानि में भी घिर आई थी चिन्तामणि। आत्मग्लानि इस बात की कि बिल्वमंगल जैसे विद्वान, कवि, गायक और अनन्य-एकनिष्ठ प्रेमी युवक की क्या

दशा बना दी है एक गणिका ने! ...गणिका? ...हां, गणिका...कंचनी...वेश्या...यही सब तो हूं मैं...यद्यपि अपने मंगल के साथ होती हूं तो स्वयं को मात्र एक प्रेमिका ही समझती हूं...पर आज मैं इसके साथ होती हुई भी स्वयं को गणिका, कंचनी और वेश्या ही कहूंगी...मेरे ही मोह-जाल में इस बेचारे की यह दशा हो गई है...मेरे ही रूप का जादू इसके सिर चढ़कर बोल रहा है...अपनी सुध-बुध ही खो बैठा है यह तो...

मुंडेर पर झूलते काले लम्बे भयानक कौड़िया सर्प को देखकर बिल्वमंगल की भी जिह्वा तालू से चिपक गई थी। वह अवाक, हत्प्रभ और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था। रह-रहकर एक ही बात उसके मस्तिष्क में घुमड़ने लगी कि जिस चीज़ को देखते ही वह आतंकित हो आया है उसे ही अपने हाथों-पैरों से पकड़ता-जकड़ता हुआ वह ऊपर चढ़ आया था—अभी थोड़ी देर पहले। उस समय भी तो ऐसी ही अंधेरी-तूफ़ानी रात थी...तब भी तो इसी तरह बिजली चमक रही थी...तो फिर क्यों नहीं जान सका था तब कि यह रस्सा नहीं सर्प है?...क्या रस्से और सर्प में भेद कर पानेवाला विवेक हारे पड़ा था तब?...पर क्यों?...चिन्तामणि के प्यार की मदहोशी में?...परन्तु प्यार तो मद नहीं अमृत होता है...मैंने चिन्तामणि के प्रेमामृत का पान किया है...शायद इसी कारण अमरत्व पा चला हूं...नहीं तो हड़हड़ाती हुई तूफ़ानी नदी को आधी रात के समय तैरकर पार कैसे कर आता...और फिर यह भयानक कौड़िया सर्प अपना विषैला प्रहार क्यों न कर देता मुझ पर?

"एक बात पूछूं मंगल?" चिन्तामणि ने दरवाज़ा बन्द करते हुए बड़े ही गम्भीर तथा चिन्तायुक्त स्वर में पूछा।

"हूं!" अपने-आप में खोए हुए बिल्वमंगल ने भीतर आकर पलंग पर बैठते हुए कहा।

"आज शाम को ही तो तुम मेरे पास से गए थे...फिर इस समय ऐसी हालत में आने की कौन-सी विवशता हो आई थी?" चिन्तामणि के कहने के अन्दाज़ में कोई ताना या व्यंग्य नहीं था, बल्कि था तो मात्र एक जिज्ञासा-भाव।

"तर्क मेरे पास कोई नहीं है चिन्ते! बस मुझे लग उठा कि जाना ही होगा, जाए बिना चलेगा नहीं, सो चल दिया।"

"उफ़!" कहती हुई चिन्तामणि की आंखें मुंद गईं, होंठ फड़फड़ा पड़े, और लगा कि शिराओं में एक तीखे दर्द की लक़ीर खिंच गई है।

बिल्वमंगल ने अपनी प्रिया को दोनों हाथों से थामकर अपने साथ पलंग पर बिठा लिया। बड़े प्रेम से उसे आलिंगित कर पूछने लगा, "क्या हुआ चिन्ते? तुम काहे को चिन्तित हो गई हो? जो होना था हो गया। अब तो मैं ठीक-ठाक हूं। कुछ भी तो अघट नहीं घटा।"

"जो हो गया उसकी चिन्ता नहीं हो रही मंगल!"

"तो?"

"जो होनेवाला है वह डरा गया है मुझे।"

"क्या होनेवाला है चिन्ते?"

"अघट...जो घटा नहीं, टल गया..." कहकर चुप हो गई।

"पर क्या?" परेशान होकर पूछ बैठा वह।

एक लम्बी ठंडी सांस भरकर छोड़ दी चिन्तामणि ने, "छोड़ो मंगल...तुम नहीं समझोगे...कहना बेकार है..." स्वर फुसफुसाहटी-सा था उसका। मानो स्वयं से सम्बोधित हो।

पर सुन लिया था बिल्वमंगल ने भी।

पूछा, "क्या नहीं समझूंगा मैं? कहो ना!"

"देखो मंगल!" निश्चय लेती मुद्रा में चिन्तामणि कहने लगी, "एक बात मानो...तुम...यहां मत आया करो।" कह तो गई पर कहते हुए एक झटका-सा खा गई कहीं बहुत गहरे में।

"क्यों?" चौंक पड़ा वह।

"इसलिए कि मैं एक गणिका हूं।"

"मैं जानता हूं।" आश्चर्य में दड़ गया वह।

"मैं एक वेश्या हूं।" भिंचे जबड़ों में से तीखा स्वर सरका।

"मैं जानता हूं।" आश्चर्य और बढ़ गया कि आख़िर यह ऐसी बातें क्यों

करने लगी है!

"तुम...कुछ नहीं जानते मंगल, कुछ नहीं जानते..."

और बिल्वमंगल वास्तव में सम्मोहित अवस्था में हो आया। उसे लगने लगा कि वह अपने-आप से कहने लग गया है कि वह कुछ नहीं जानता। अपनी मोहिनी प्रियतमा के सम्मोहन में वह अपने मन में बार-बार वही शब्द दोहराने लगा कि मैं कुछ नहीं जानता...मैं कुछ नहीं जानता...मैं कुछ जानना भी नहीं चाहता...अपनी चिन्तामणि के सिवा और कुछ जानना नहीं चाहता...किसी अन्य को जानना नहीं चाहता...अपने-आप को भी नहीं...

और चिन्तामणि मुखर रूप में वह वाक्यांश कहकर शेष अंशों को अपने भीतर मौन भाषा में कहने लगी थी—'सच ही तो है, तुम कुछ नहीं जानते...अपने-आप को भी नहीं जानते...अपने भीतर छिपी शक्ति को नहीं पहचानते...उफ़! मंगल, भगवान तेरा मंगल करे...तुझे सद्बुद्धि दे कि तू अपनी उस परम शक्ति को चीन्ह सके...परमपिता परमेश्वर ऐसी परम शक्ति किसी विरले मनुष्य को ही प्रदान करता है...ऐसी अनन्यता! ऐसी लगन! ऐसा दृढ़ विश्वास! इतना गहरा और सच्चा प्यार! ...धन्य हुई मैं...मंगल, तूने निहाल कर दिया मुझको...ऐसा परम सौभाग्य संसार में किसी नारी को नहीं मिला होगा...किसी कुलवधू को भी नहीं...जो तूने मुझ-सी अधम गणिका को दे दिया! ...जाने मैं अपने पिछले जन्म के किन अच्छे कर्मों के फलस्वरूप तुम-सा प्रेमी पा गई हूं! पर...आज मैं यह सत्य भी पा गई हूं कि क्यों नहीं मिला रह पाता ऐसा सौभाग्य किसी को! ...सच्चा प्रेम स्वार्थी नहीं होता ना! ...बलिदान मांगता है...इसीलिए तो बलि चढ़ जाते हैं सारे सांसारिक सुख-सौभाग्य! ...क्योंकि इस कोटि की अनन्यता तथा लगन-शक्ति भी तो सामान्य संसारियों में नहीं होती...ये तो पराशक्ति का प्रतिरूप है...अतः इसे संसारी मोह-बन्धनों में बांधकर नष्ट न करो मंगल! इस शक्ति को सृजन में लगाओ...सृजेता बनो...और सृजेता बनकर उस परम सृजेता के समकक्ष हो जाओ जिसने अपनी परम शक्ति का अंश तुम्हें दिया है।'

"कहो न चिन्ते...और कहो...कहो..." बिल्वमंगल ने चिन्तामणि को अपने अंक में भरकर पूछा।

आत्मालाप में लीन चिन्तामणि मानो स्वप्नावस्था में जगा दी गई हो।

कुछ पल लगे स्वयं को सहेजने-बटोरने में। फिर अपने उपचेतन को अपने विवेक की मुश्कों से कसकर दृढ़ निश्चय का चाबुक-सी मारती आवाज़ में कड़क उठी, "मैं कहती हूं चले जाओ यहां से!" कहते ही वह एक झटके के साथ मंगल के आलिंगन से मुक्त हो गई और उसके सामने तनकर खड़ी हो द्वार की ओर बांह फैला दी।

मंगल सकपका गया।

"जाओ!" चिन्तामणि का आदेश देता स्वर पुनः उभरा।

"कहां जाऊं चिन्ते?" अपनी प्रिया के इस अप्रत्याशित व्यवहार को न समझ पाकर हैरान हो रहा था वह।

"कहीं भी जाओ! पर यहां से चले जाओ!" स्वर में आक्रोश था।

"चला जाऊंगा...दिन तो..."

"नहीं-ईं-ईं...अभी...इसी समय!" आक्रोश बढ़ गया चिन्तामणि का।

"अभी!..." कुछ संभलकर, "न जाऊं तो?" भृकुटि तन आई।

"तो मैं धक्के मारके निकाल दूंगी।" आक्रोश चरम सीमा पर आ पहुंचा था। सांस फूल आई थी। नथुने फड़कने लग गए थे। आवाज़ चीख़-सी लगने लगी थी।

वह लगभग झपट-सी पड़ी उस पर। दोनों हाथों से उसकी बांह जकड़कर झटके से उठा दिया उसे और फिर धकेलती-सी ले गई सीढ़ियां उतारकर द्वार तक। एक हाथ से द्वार की चटखनी खोली; भड़ाक से द्वार के दोनों पल्ले खोल डाले और फिर मंगल की पीठ पर अपनी दोनों हथेलियां गाड़कर अपने क्रोध की पूरी संचित शक्ति के साथ धक्का दे दिया उसे। वह औंधे मुंह बाहर जा गिरा कीचड़ पर। ऊपर से मूसलाधार बौछारें पड़ रही थीं।

परन्तु उसे बाहर करते ही चिन्तामणि ने द्वार बन्द कर लिया और दौड़ती हुई सीढ़ियां चढ़कर अपने कक्ष में आ गई। फिर धड़ाम से अपने बिस्तर में जा गिरी औंधे मुंह। लगा कि मुंह के नीचे नर्म तकिया नहीं बल्कि कीचड़ है

और ऊपर मसहरी नहीं बल्कि मूसलाधार पड़ता मेह है। बिजली की कड़क सुनाई दी तो चिन्तामणि को लगा मानो बारजे में खुलनेवाली खिड़की के दोनों कपाट फड़ाक से खुल पड़े हैं और मुंडेर से लटका सर्प रेंगकर भीतर आ घुसा है और अब उस कौड़िया सर्प ने उसे पूरी तरह अपनी जकड़ में लेकर अपना फन उठाकर उसके वक्ष पर दे पटका है...और सर्प-विष सीधा उसके हृदय में उंडेल दिया है...

औंधी पड़ी-पड़ी ही चिन्तामणि अपनी दोनों हथेलियों से अपने हृदय-प्रदेश को बाहर से मसलती-कुचलती रही। अपने-आप से लड़ती-भिड़ती-जूझती रही। मन और मस्तिष्क के युद्ध में लहूलुहान होती रही।

बाहर रात-भर कीचड़-पानी में लथपथ बेहोश पड़ा रहा मंगल। देह सुन्न हो गई थी। सांस की गति नामालूम-सी हो चली थी। चेतनाशून्य अवस्था में न पड़ा होता तो निश्चित था कि सुबह तक सांस की गति एकदम अवरुद्ध हो गई होती और प्राण-पखेरू उड़ चुके होते।

भोर के उजाले में एक साधु की दृष्टि पड़ गई थी मंगल पर। वह उसे कन्धे पर उठाकर अपने ठिकाने पर ले गया था। किसी प्रकार उसके सुन्न शरीर को गरमी पहुंचाकर उसकी चेतना कुछ-कुछ लौटा पाने में सफल हो गया था।

बिल्वमंगल अर्धचेतनावस्था में पड़ा-पड़ा रह-रहकर बड़बड़ाने लगा था। चिन्तामणि का नाम ही हर बार की बड़बड़ाहट में सुनाई पड़ता।

साधु समझ गया कि यह कोई ठुकराया हुआ प्रेमी है।

दयावश वह उसका उपचार करने लगा—अपनी कुटिया में उपलब्ध जड़ी-बूटियों से। यमुना के पूर्वी तट पर बने छोटे-से कृष्ण मन्दिर के कच्चे अहाते में ही थी वह कुटिया।

चिन्तामणि अपने कक्ष में ही पड़ी हुई है तब से। उसी बिस्तर पर। चित लेटी है। आंखें छत की कड़ियों में टंगी हुई हैं।

अपने मंगल के साथ बीते पिछले कई वर्ष उसके स्मृति-पटल पर कौंध रहे हैं। अनेक घटनाएं...अनेक प्रेमालोड़ित क्षण...मस्ती-भरी झूमें...बिल्वमंगल के कई प्रेमगीत जो उसने अपनी चिन्तामणि पर ही रचे और रचकर सिर्फ़ उसे ही सामने बिठाकर सुनाए थे। एक गीत तो प्रायः ही सुनाया करता था वह।

चिन्तामणि को रह-रहकर उसी गीत के बोल याद आ रहे हैं :

पलक ओट नहिं होत लुनाई।
घर गुरुजन बहुतैं विधि त्रासत, लाज करावत, लाज न आई।
नैन जहां दरसत तुमि अटकीं, स्रवन थके सुनि वचन सुहाई।
रसना और नहीं कछु भाषति, चिन्तामणि रट इहै लगाई।
चित चंचल संगहिं संग डोलत, लोक-लाज-मरजाद मिटाई।
मन हरि लियौ तोर छबि तबहीं, तन बपुरे को कहा बसाई।

और इस गीत के बोलों से भी अधिक छू जाती थी राग धनाश्री में की गई इसकी बन्दिश तथा मुग्ध कर देनेवाली मंगल की सुरीली आवाज़। आवाज़ से भी कहीं बढ़कर छेड़ जाती थी उसकी वह प्रेमल दृष्टि जो बराबर चिन्तामणि के लावण्य पर टिकी रहती थी।

चिन्तामणि को भले ही अपने रूप-लावण्य का कितना ही गुमान था, परन्तु मंगल के मुख से उसे अपनी लुनाई की प्रशंसा सुनकर गुमान नहीं होता था, बल्कि वह निहाल हो जाया करती थी। अपनी लुनाई की समस्त पूंजी लुटा देना चाह उठती थी, अपने मंगल पर वारकर फेंक डालना चाहती थी। समूची आगरा नगरी मर-मिट रही थी चिन्तामणि की अपूर्व लुनाई पर, परन्तु चिन्तामणि मरती थी केवल अपने मंगल पर। मंगल भले ही चन्दवरदाई का वंशज था और उसके पिता रामदास अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गायक थे, परन्तु चिन्तामणि के समक्ष यह सब मिट्टी-समान था। धन-दौलत की कोई कमी न थी उसे। स्वयं शहंशाह अकबर उसके प्रशंसक थे और चिन्तामणि को हुक़ूमत की ओर से प्रति मास मोटी रक़म वज़ीफ़े के रूप में मिला करती थी। विशेष शाही उत्सवों में वह निमन्त्रित की जाती और वहां पर जो इनाम मिलते सो

अलग। एक बार तो बिल्वमंगल द्वारा रचित यही पद 'पलक ओट नहिं होत लुनाई' राग धनाश्री में ही गाकर सुना दिया था उसने शहंशाह को, तो एक लाख सोने की मोहरें इनाम में पा गई थी।

उसे याद है आज तक वह दिन, जब बिल्वमंगल के पिता का देहान्त हुआ था। उस समय भी बिल्वमंगल चिन्तामणि के चौबारे पर ही था। पिता के देहान्त का संवाद पाकर घर गया था—नदी के उस पार साही में। और फिर पिता की चिता जलाकर उसी सांझ फिर आ पहुंचा था अपनी चिन्तामणि के पास। बोला कुछ नहीं था। टुकर-टुकर तकता बैठा रहा था चिन्तामणि के सामने। प्रायः वह उसकी आंखों में ही सीधे-सीधे निहारा करता—दृष्टि घोंपता-सा...डूब-डूब जाता हुआ। नयनों की ही भाषा में प्रायः प्रश्न कर दिया करती चिन्तामणि कि क्या देख रहे हो इनमें? और तब अस्फुट-से शब्द फड़फड़ा पड़ते मंगल के होंठों पर—'खंजन नयन रूप-रस माते।'

बिल्वमंगल साधु की कुटिया में पड़ा-पड़ा अब कभी अपनी प्रियतमा का नाम बड़बड़ाता है तो कभी ये अस्फुट शब्द—'खंजन नयन रूप-रस माते।' मानो इस समय भी वह चिन्तामणि की खंजन पक्षी समान आंखों में झांक रहा है—दृष्टि घोंपकर...डूब-डूब जाता हुआ।

आकंठ ही तो डूबा हुआ है उसका व्यक्तित्व अपने लावण्यमयी प्रियतमा के रूप-रस माते खंजन नयनों में।...कोकिलकंठी चिन्तामणि के स्वर में अपने रचे पद सुनकर अपने कृतित्व की सार्थकता अनुभव होने लगती थी बिल्वमंगल को।

पर आज उसी चिन्तामणि ने उसे धक्के देकर अपने घर से बाहर निकाल दिया!—यह रहस्य समझ नहीं पा रहा भोला मतवाला प्रेमी। इसी से उसे अपना अस्तित्व अर्थहीन लगने लगा।

इसी निरर्थकता का बोध लिए भटकने लगा बिल्वमंगल।

इसी बोध का बोझ ढोए-ढोए भटकना दिनोंदिन कष्टकर होता चला गया उसके लिए।

भटकन की अवधि में वह न तो अपने घर साही गया और न ही चिन्तामणि के पास। घर में पत्नी (इन्द्रा) थी और मां (कस्तूरी) थी। भटकन की मनःस्थिति में कभी-कभी उनका ध्यान भी आ जाता, पर वह ध्यान मोह न बन पाता कि खींच ले जाता उसे।

चिन्तामणि के ध्यान का मोह भंग होने के बावजूद बड़ी खींच लिए हुए था; परन्तु बिल्वमंगल को बार-बार ज़ोर लगाकर उस खींच की भींच से स्वयं को झटकना पड़ता। इसी खींच-झटक में वह टूटता-भटकता हुआ मथुरा जा पहुंचा।

मथुरा में एक मन्दिर के प्रांगण में जा पड़ा था वह टूटकर। थका-हारा, भूखा-प्यासा।

मन्दिर के मुख्य पुजारी की दृष्टि पड़ी तो उसने दयावश उसे आसरा दे दिया। मन्दिर की मूर्तियों की सफ़ाई आदि का काम उसे सौंप दिया। बदले में वहीं पड़े रहने की अनुमति तथा दो जून का भोजन।

कृष्ण-मूर्ति की सफ़ाई कर रहा है बिल्वमंगल।

संगमरमर की मूर्ति...मखमली पीताम्बर का परिधान...सिर पर मोर मुकुट। ...परिधानरहित मरमरी पिंडलियों की सफ़ाई करते समय बिल्वमंगल को सहसा लग उठा है जैसे उसके हाथ चिन्तामणि के गात पर सरसरा रहे हैं।

तत्काल उसकी दृष्टि उठ जाती है मूर्ति के मुख की ओर। मुस्कुराते हुए चेहरे पर जड़े खंजन नयनों से रस बरसता अनुभव होने लगता है...

...टुकर-टुकर निहारने लगता है...

...अपलक जमी दृष्टि भ्रमित हो जाती है और अधर फड़फड़ा पड़ते हैं—'खंजन नयन रूप-रस माते'।

मस्तिष्क के पटल पर उभर आती है चिन्तामणि की छवि।

आत्म-विस्मृति के मादक क्षण रस-विभोर कर जाते हैं।

झूम-झूम गा रहा है वह—'खंजन नयन रूप-रस माते।'

कि तभी आ पहुंचती है मन्दिर में पूजा करने एक युवती।

बिल्वमंगल को उस युवती की उपस्थिति की कोई अनुभूति नहीं। वह तो आत्मलिप्त हुआ भाव-विभोर अवस्था में बार-बार वही बुदबुदाए जा रहा है—'खंजन नयन रूप-रस माते।'

युवती उसे कोई भक्ति-भाव-विभोर भक्त समझकर अपनी पूजा निपटा चलने को होती है तो सहसा बिल्वमंगल की दृष्टि उस पर पड़ती है।

दृष्टि पड़ते ही अनायास उसके मुंह से निकल जाता है, "चिन्तामणि!"

युवती आश्चर्यचकित होकर देखने लगती है उसे, जो उसी तरह भाव-विभोर हुआ तक रहा है उसकी ओर जैसे कुछ क्षण पूर्व मूर्ति की आंखों में झांककर 'खंजन नयन रूप-रस माते' गुनगुना रहा था।

वह समझती है, शायद इस भक्त को कोई भ्रम हुआ है।

"मैं चिन्तामणि नहीं हूं। आपको अवश्य कोई भ्रम हुआ है।"

"भ्रम!"

"हां।"

"नहीं, चिन्तामणि, नहीं...तुम्हें पहचानने में भी मुझे भ्रम होगा क्या चिन्ते!...ऐसा मत कहो...इतना तो बता दो कि आख़िर तुमने अपने मंगल को इस प्रकार क्यों ठुकरा दिया? क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा? प्रेम ही तो किया है! सो भी अपनी आत्मा के अणु-अणु से चिन्तामणि!..."

वह कहता ही रह गया।

और वह चली गई। उसे कोई प्रेम-दीवाना समझकर।

बुरा भी नहीं मानी थी वह। विदुषी युवती थी। नाम था प्रभा। नगर के जाने-माने विद्वान पंडित भास्कर की धर्मपत्नी।

परन्तु बिल्वमंगल उसके पीछे-पीछे हो लिया।

प्रभा सड़क पार करके एक गली में चलने लगी।

बिल्वमंगल भी उसी गली में चल दिया।

एक मकान के मुख्यद्वार पर जाकर वह रुकी। मुड़कर पीछे देखा तो बिल्वमंगल को पास ही खड़े पाया।

"मैंने कह दिया न आपसे कि मैं वह नहीं जो आप समझ रहे हैं।" प्रभा की मुद्रा तनिक तन गई थी।

"मैं समझ गया हूं चिन्ते, तुम अत्यधिक क्रुद्ध हो मुझ पर। पर इस प्रकार 'आप-आप' कहकर मेरे प्यार का, मेरी अपनत्व की भावना का अपमान तो न करो!...इतना तो बता ही दो कि तुम्हारे क्रोध का कारण क्या है?...मेरी तो अभी तक वही स्थिति है कि तुम्हें देखते ही अपलक निहारते रहने बिन चैन नहीं आता। याद है न तुम्हें मेरा वह गीत—'पलक ओट नहिं होत लुनाई!' मैंने ही तो लिखा था तुम्हारे लावण्य की स्तुति में! और..."

"तो क्या आप ही कवि बिल्वमंगल हैं?" प्रभा आश्चर्य में पड़कर तकने लग गई उसे। उसने बिल्वमंगल के गीत सुने हुए थे। उसके नाम से परिचित थी वह।

"कवि बिल्वमंगल तो बाद में बना था, पहले तुम्हारा मंगल था...अब भी हूं...सदा रहूंगा तुम्हारा...तुमने चाहे आंखें फेर ली हैं अपने मंगल से...पर कारण तो बता दो..."

प्रभा उसे टोककर कहने लगी, "आइए, भीतर आइए।" और वह भीतर चल दी। बिल्वमंगल पीछे-पीछे हो लिया।

प्रभा उत्सुक हो आई थी कवि के निजी जीवन की उस त्रासदी को जानने के लिए जिसने उसकी ऐसी दशा बना डाली थी कि वह आत्म-विस्मृत हुआ भटकने लगा है...हर किसी में उसे अपनी प्रेयसी की छवि उभरती दिखाई देने लगी है।

"पधारिए।" भीतर ले जाकर प्रभा ने उसे एक सुसज्जित कक्ष में चौकी पर बिठाया। फिर स्वयं भी उसके सामने बैठ गई।

"हां, तो अब बताइए!" प्रभा ने पूछा।

"क्या बताऊं?" बिल्वमंगल की दृष्टि प्रभा की आंखों में घुपी ही चली जा रही थी, "मेरे बताने को क्या रह गया है! ...मैं तो तुम्हीं से पूछना चाहता हूं..." उसकी दृष्टि और अधिक धंस गई थी प्रभा के नयनों में, "चलो, ठीक है, तुम नहीं बताना चाहतीं तो फिर मुझे इन्हीं से पूछ लेने दो...इन खंजन नयनों से...इन रूप-रस माते नयनों से..." कहता-कहता वह उठकर प्रभा के बिलकुल निकट जा पहुंचा और उसके दोनों कन्धे अपने हाथों से थामकर उसके उठे चेहरे पर झुक गया—आंखों में आंखें गाड़ता हुआ।

प्रभा थोड़ी विचलित हुई। हटने का प्रयास करने लगी। परन्तु बिल्वमंगल के बाहुओं के दबाव के कारण हट न सकी।

बांहों का दबाव बढ़ता गया।

प्रभा के प्रयास निष्फल होते गए।

बांहें पूरी तरह से बंध गईं उसके गिर्द।

वह भिंचने लगी तो बरबस चीख़ पड़ी।

चीख़ चौंका गई बिल्वमंगल को।

और बस इसी चौंक का प्रहार उसे चेत में ले आया।

चेतना लौटी तो वह छटपटा उठा, "उफ़! ...क्षमा करना देवी...क्षमा करना...मैं...मैं बेसुधी में यह पाप कर बैठा..."

प्रभा हत्प्रभ हुई तकने लगी।

बिल्वमंगल अपनी दोनों हथेलियां अपनी आंखों के सामने फैलाकर आत्मालाप-सा करता रहा—"पर...कैसी थी यह बेसुधी... मोहांधता... कामांधता... जिसने मेरे विवेक को अन्धा कर डाला...यह...यह सारा अन्धापन मेरी...मेरी इन आंखों के कारण ही है जो...जो हर कहीं उसके रूप-रस माते खंजन नयनों को हेरते-निहारते फिरते हैं...हां...इन्हीं आंखों का

दोष है...ये दुष्ट हैं...पापी हैं..." कहता-कहता वह इधर-उधर दृष्टि घुमाने लगा तो सामने की दीवार में ठुंके दो सूजे दिख गए। दृष्टि उन सूजों पर जा टंगी...वह लपका...दोनों हाथों से पूरी शक्ति के साथ सूजों के मुट्ठे थामकर अपनी ओर खींचे...और फिर देखते-ही-देखते दोनों सूजों के नुकीले सिरे अपनी दोनों आंखों में खच्च्-से घोंप लिए।

प्रभा देखती ही रह गई। ठगी-सी।

इस प्रकार बिल्वमंगल[1] सूरदास हो गए।

और सूरदास होकर मथुरा छोड़ चल दिए रुनकता[2] को। और फिर रुनकता में कुछ समय तक रहकर वहां से भी विदा ली तथा जा बसे गौघाट। इकतीस वर्ष की आयु तक गौघाट में ही रहे। यहां रहते हुए उन्होंने अपनी काव्य तथा संगीत साधना को चरम सीमा पर पहुंचा दिया। देश-भर में वह विनय भक्ति के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। दिनोंदिन उनकी लोकप्रियता बढ़ती ही चली गई।

कवि सूरदास की प्रसिद्धि सुनकर ही वल्लभ सम्प्रदाय के महाप्रभु वल्लभाचार्य अड़ैल से गोवर्द्धन जाते हुए रास्ते में गौघाट रुके। सूरदास के पास सन्देश भिजवाया। सूरदास भी वल्लभाचार्य के पांडित्य की चर्चा सुन चुके थे। वह यह भी जानते थे कि वल्लभाचार्य शंकराचार्य के मायावाद का खंडन करके दक्षिण भारत में अपनी विद्वता का झंडा फहरा आए हैं।

सूरदास जा पहुंचे वल्लभाचार्य से भेंट-वार्ता करने।

वल्लभाचार्य ने उन्हें सादर अपने निकट आसन दिया।

---

1. सूरदास के विभिन्न नामों को लेकर आज तक हिन्दी साहित्य के शोधकर्ताओं में विवाद चल रहा है। हमने इस विवाद में न पड़कर 'भक्तमाल' तथा 'भविष्यपुराण' के साक्ष्य के आधार पर बिल्वमंगल सूरदास को ही महाकवि सूरदास के रूप में माना है।
2. रुनकता नामक स्थान आगरा-मथुरा रोड पर रेणुका स्थान और गौघाट के निकट स्थित है।

"कुछ भगवत्-यश का वर्णन करो सूरदास!" वल्लभाचार्य ने कहा।

सूर ने दास्य भाव और विनय के अनेक पद गाकर सुनाए।

उपस्थित भक्त-मंडली झूम-झूम गई।

वल्लभाचार्य ने कहा, "सूरदास! यह क्या?"

"क्या महाप्रभु?" सूर ने हाथ बांध पूछा।

"इस प्रकार घिघियाते क्यों हो भक्त? मात्र विनय से ही तो भक्ति नहीं की जाती। कुछ भगवत्-लीला का वर्णन भी करो।"

"सो अभी मुझसे न बन पड़ेगा महाप्रभु!"

"कारण?"

"अभी तो मैं अपने पाप-कर्मों का प्रायश्चित्त कर रहा हूं। और प्रायश्चित्त विनीत तथा दीन भाव से ही सम्भव है महाप्रभु! प्रायश्चित्त पूरा कर लूं तो करूं लीला-वर्णन!"

"ठीक है सूरदास! परन्तु तुम समझ लो कि आज तुम्हारा प्रायश्चित्त-काल पूरा हुआ। आज हम तुम्हें 'समर्पण' मन्त्र देंगे। बोलो, लोगे?"

"जो आज्ञा महाप्रभु!" और सूर ने सिर नवा दिया।

इस प्रकार सूरदास के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

वल्लभाचार्य ने न केवल उन्हें गुरुमन्त्र दिया बल्कि उन्हें गौघाट से अपने साथ गोकुल भी ले गए।

गोकुल से फिर महाप्रभु वल्लभाचार्य सूर को ले गए गोवर्द्धन। और गोवर्द्धन में श्रीनाथजी के मन्दिर की कीर्तन-सेवा का कार्य उन्हें सौंप दिया।

इसी कीर्तन-सेवाकाल में सूरदास नियमित रूप से कृष्ण-लीला तथा भक्ति-विषयक पद बना-बनाकर कीर्तन के समय गा-गाकर सुनाने लगे।

कीर्तन सुननेवाले भक्तों की भीड़ दिनोंदिन बढ़ने लगी।

कवि सूरदास की ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ने-फैलने लगी।

भागवत के दशम स्कन्ध को ब्रजभाषा में ढालकर 'सूरसागर' की रचना भी यहीं पर की।

यहीं पर उनकी भेंट अपने समकालीन महाकवि तुलसीदास से हुई। तुलसीदास अपने छोटे भाई नन्ददास (प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि) से मिलने ब्रज आए हुए थे कि एक दिन सूरदास का कीर्तन सुनने श्रीनाथजी के मन्दिर में जा पहुंचे।

सूर ने सुना तो आगे बढ़कर दोनों बांहें सामने की ओर फैला दीं महाकवि के स्वागत में।

"धन्य भाग्य हमारे, जो आप पधारे!" गद्गद भाव से कहा सूर ने।

तुलसी लपककर भेंटे सूर से।

एक-दूसरे को बांहों में भरे कुछ क्षणों तक खड़े रहे दोनों।

दो महाकवियों का महान मिलन देख भाव-विभोर होते रहे उपस्थित भक्त।

भेंट के उपरान्त सूर ने तुलसी को सम्मानपूर्वक अपने पास आसन पर बिठाया।

फिर हुआ भजन-कीर्तन।

सूरदास ने उस दिन अनेक भजन गाए।

और अन्त में छेड़ दी राग धनाश्री की तान...

...उस तान की सान चढ़कर गूंज उठे ये बोल :

पलक ओट नहिं होत कन्हाई।
घर गुरुजन बहुतैं विधि त्रासत, लाज करावत, लाज न आई।
नैन जहां दरसत हरि अंटके, स्रवन थके सुनि वचन सुहाई।
रसना और नहीं कुछ भाषति, स्याम-स्याम रट इहै लगाई।
चित चंचल संगहिं संग डोलत, लोक-लाज-मरजाद मिटाई।
मन हरि लियौ सूर-प्रभु तबहीं, तन बपुरे को कहा बसाई।

"धन्य है महाकवि! धन्य है आपका अनन्य भक्तिभाव!" सहसा कह उठे तुलसीदास।[1]

सूरदास अभी कुछ कह भी नहीं पाए थे कि अपने पैरों पर किसी की उंगलियों का स्पर्श अनुभव कर हाथ बढ़ा टटोलने लगे।

सूर के टटोलते हुए हाथ एक झुके सिर पर छा-छू गए तथा उनके मुंह से निकल गए ये शब्द, "कल्याण करें कन्हाई तिहारा।"

सूर बैठे थे उस समय और उनके पैर छूती उंगलियों के स्वामी का सिर झुका हुआ था।

झुके सिर के नीचे से फुसफुसाते-से शब्द उभरे, "लुनाई के प्रति अनन्य प्रेम को कन्हाई की अनन्य भक्ति में परिवर्तित पा मैं धन्य हो गई मंगल!"

सूरदास का आशीर्वाद देता हाथ कांप गया।

और उनकी अन्धी आंखों के सम्मुख चिन्तामणि के रूप-रस माते खंजन नयन तथा उसकी लुनाई कौंध गई।

चिन्तामणि को जोगन बने बरसों हो गए हैं।

वह अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर समस्त पूंजी अपने मंगल की पत्नी इन्द्रा को सौंप आई थी साही जाकर। दस बरस हो चुके थे उस बात को।

वैराग्य तो उसे उसी दिन से हो गया था इस सारे माया-मोह से जिस दिन उसने अपने मंगल को धक्का देकर अपने घर से निकाल दिया था। बाद में एक दिन ठीक उसी तरह अन्तिम धक्का दे दिया था अपने भीतर बचे-खुचे माया-मोह को। और फिर यायावर बन भटकने को निकल पड़ी थी...

...भटकती-भटकती ही जा पहुंची थी गोवर्द्धन।

---

1. तुलसीदास ने रामभक्त होते हुए भी इसी भेंट के फलस्वरूप कृष्ण-भक्ति पद भी लिखने शुरू किए थे जो बाद में 'कृष्ण गीतावली' में संकलित हुए।

अपने आराध्य की चरण-रज सीस-धरकर चुपचाप चल दी थी पुनः भटकने को।

अनेक दशक बीत गए उस घटना के बाद।

वृद्ध हो चुके हैं महाकवि सूरदास।

अन्तिम वेला निकट आई जान श्रीनाथजी के मन्दिर को छोड़ पारसौली ग्राम में आ टिके थे—महाप्रस्थान की प्रतीक्षा में।

महाप्रस्थान के पूर्व के हैं ये पल।

अनायास उनके स्मृति-पटल पर उभर आई है लावण्यमयी चिन्तामणि तथा उसके रूप-रस माते खंजन नयन।

सहसा फड़फड़ा पड़ते हैं महाकवि के अधर-पक्षी। और फूट पड़ता है अन्तिम पद :

खंजन नयन रूप-रस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न सुनाते।
चल-चल जात निकट स्रवनन के उलट-पलट ताटंक फंदाते।
सूरदास अंजन गुण अंटक नाहर सब उड़ि जाते ॥

और इस पद के अन्तिम शब्द के उच्चारण के साथ ही महाकवि सूर के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।

संकलन

सूरदास के भजन

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे,
मधुवन मोहिं पठायो।
मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।

चार पहर बंसीबट भटक्यो,
सांझ परे घर आयो।
मैं बालक बहिंयन को छोटो,
छींको किहि विधि पायो।

ग्वाल बाल सब बैर परे हैं,
बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मन की अति भोरी,
इनके कहे पतियायो।

जिय तेरे कछु भेद उपजिहै,
जानि परायो जायो।
यह लै अपनी लकुटि कमरिया,
बहुतहिं नाच नचायो।

सूरदास तब विहंसि जसोदा,
लै उर कंठ लगायो।
मैया मोरि मैं नहिं माखन खायो।

मधुकर स्याम हमारे चोर

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हर लियो माधुरी मूरत,
निरख नयन की कोर।
मधुकर स्याम हमारे चोर।

पकरे हुते आन उर अन्तर,
प्रेम प्रीति के जोर।
गए छुड़ाय तोर सब बन्धन,
दै गए हंसन अकोर।

उचक परो जागत निसि बीते,
तारे गिनत भई भोर।
सूरदास प्रभु हत मन मेरो,
सरबस लै गयो नन्द किसोर।

अखियां हरि दरसन की प्यासी

अखियां हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहत कमल नैन को,
निसिदिन रहत उदासी।
अखियां हरि दरसन की प्यासी।

केसर तिलक मोतिन की माला,
बृन्दाबन के बासी।
नेह लगाय त्याग गए तृन सम,
डारि गए गल फांसी।

काहु के मन की को जानत,
लोगन के मन हांसी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं,
लैहों करवट कासी।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिवत भई,
यह अजहुं है छोटी।
मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।

तू जो कहति बल की बेनी,
ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछति,
नागिन-सी भुईं लोटी।

काचो दूध पिवावत पचि पचि,
देत न माखन रोटी।
सूर स्याम चिरजीव दोउ भैया,
हरि-हलधर की जोटी।

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो,
अपने पनहि करो।
प्रभु मेरे औगुन चित न धरो।

इक लोहा पूजा में राखत,
इक घर बधिक परो।
यह दुविधा पारस नहिं जानत,
कंचन करत खरो।

इक नदिया इक नार कहावत,
मैलो नीर भरो।
जब मिलकै एक बरन
भये सुरसरि नाम परो।

एक जीव इक ब्रह्म कहावत,
सूर - स्याम झगरो।
अब की बेर मोहि पार उतारो,
नहिं पन जात टरो।

निसिदिन बरसत नैन हमारे

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर,
जब तें स्याम सिधारे।
निसिदिन बरसत नैन हमारे।

अंजन थिर न रहत अंखियन में,
कर कपोल भये कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूं,
उर बिच बहत पनारे।

आंसू सलिल भये पग थाके,
बहे जात सित तारे।
सूरदास अब डूबत है ब्रज,
काहे न लेत उबारे।

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो,
तोहि जसुमति कब जायो।
मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।

कहा कहौं एहि रिस के मारे,
खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता,
को है तुम्हरो तातु।

गोरे नन्द जसोदा गोरी,
तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब,
सिखै देत बलबीर।

तू मोहि को मारन सीखी,
दाउहिं कबहुं न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि,
जसुमति सुनि सुनि रीझै।

सुनहूं कान्ह बलभद्र चवाई,
जनमत ही को धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं,
हौं जननी तू पूत।

नैना भये अनाथ हमारे

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल यहां ते सजनी
सुनियत दूरि सिधारे।
नैना भये अनाथ हमारे।

वै हरि जल हम मीन बापुरी
कैसे जिवहिं नियारे।
हम चातक चकोर स्याम घन
बदन सुधानिधि प्यारे।

मधुबन बसत आस दरसन की
नैन जोई मग हारे।
सूर स्याम करी पिय ऐसी
मृतक हुतै पुनि मारे।

जो हम भले बुरे तौ तेरे

जो हम भले बुरे तौ तेरे।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई।
विनती सुनो प्रभु मेरे।
जो हम भले बुरे तौ तेरे।

सब तजि तुव सरनागत आयो,
निज कर चरन गहे रे।
तुव प्रताप बल वदत न काहूं,
निडर भये घर चेरे।

और देव सब रंक भिखारी,
त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा तें,
पाये सुख जे घनेरे।

जो हम भले बुरे तौ तेरे।

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम-क्रोध को पहिरि चोलना,
कंठ विषयन की माल।
अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।

महा-मोह के नूपुर बाजत,
निन्दा सबद रसाल।
भरम भर्यो मन भयो पखावज,
चलत कुसंग की चाल।

तृस्ना नाद करत घट भीतर,
नाना विधि दै ताल।
माया को कटि बांध्यो,
लोभ तिलक दै भाल।

कोटिक कला कांछि देखराई,
जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या,
दूरि करौ नन्दलाल।

अब की टेक हमारी

अब की टेक हमारी
लाज राखो गिरधारी।

जैसी लाज रखी पारथ की, भारत जुद्ध मझारी।
सारथी होके रथ को हांक्यौ, चक्रसुदर्सन-धारी ॥

भगत की टेक न टारी।
अब की टेक हमारी।

जैसी लाज रखी द्रोपदी की, होन न दीन्हि उघारी।
खैंजत-खैंचत दोउ भुज थाके, दुस्सासन पचिहारी।

चीर बढ़ायो मुरारी।
अब की टेक हमारी।

सूरदास की लज्जा राखो अब को है रखवारी।
राधे-राधे श्रीवर प्यारी, श्रीवृषभानु-दुलारी।

सरन तकि आयो तुम्हारी।
अब की टेक हमारी।

हम भगतन के भगत हमारे

हम भगतन के भगत हमारे।
सुन अर्जुन प्रतिज्ञा मोरी
यह ब्रत टरत न टारे।
हम भगतन के भगत हमारे।

भगतन काज लाज हिय धरि के
पांय पियादे उठ धाये।
जहं-जहं भीर परै भगतन पै
तह-तहं होत सहाये।

जो भगतन सों बैर करत है
सो निज बैरी मेरो।
देख विचार भगत-हित कारण
हांकत हौं रथ तेरो।

जीते जीत भगत अपने की
हारे हार विचारौं।
सूर स्याम जो भगत-विरोधी
चक्र - सुदर्शन मारौं।

रे मन मूरख जनम गंवायो

रे मन मूरख जनम गंवायो।
करि अभिमान विषय रस राच्यो,
नाम सरन नहिं आयो।
रे मन मूरख जनम गंवायो।

यह संसार फूल सेमर को,
सुन्दर देखि लुभायो।
चाखन लग्यो रुई उड़ि गई,
हाथ कछू नहिं आयो।

कहा भयो अब के मन सोचे,
पहिले नहिं कमायो।
सूरदास हरिनाम भजन बिनु,
सिर धुनि धुनि पछितायो।

मो सम कौन कुटिल खल कामी

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहिं विसरायो,
ऐसो नमक हरामी।
मो सम कौन कुटिल खल कामी।

भरि भरि उदर विषय कों धायो,
जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छांड़ि हरी विमुखन की,
निसिदिन करत गुलामी।

पापी कौन बड़ो जग माहिं,
सब पतितन में नामी।
सूर पतित को ठौर कहां है,
तुम बिनु श्रीपति स्वामी।

सुने री मैंने निर्बल के बल राम

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूं सन्तन की
आड़े संवारे काम।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

जब लग गज बल अपनो बरत्यो,
नेक सरो नहिं काम।
निरबल होय बलराम पुकार्‌यो,
आये आधै नाम।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

द्रुपद-सुता बेबस भई ता दिन,
गहलाये निज धाम
दुस्सासन की भुजा थकित भई,
बसन रूप भये स्याम।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

अप-बल तप-बल और बाहु-बल,
चौथा है बल दाम।
सूर किसोर कृपा से सब,
बल हारे को हरिनाम।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

सब दिन होत न एक समान

सब दिन होत न एक समान।

एक दिन राजा राज हरिश्चन्द्र,
सम्पत्ति मेरु समान।
एक दिन जाय स्वपच घर सेवत,
अम्बर हरत मसाल।

एक दिन दुल्हा बनत बराती,
चहुं दिश दुरत निसान।
एक दिन डेरा होत जंगल में,
करे सूधे पग तान।

एक दिन सीता रुदन करत है,
महा विपन उद्यान।
एक दिन रामचन्द्र मिल दोऊ,
विचरत पुष्प विमान।

एक दिन राजा राज युधिष्ठिर,
अनुचर श्री भगवान।
एक दिन द्रौपदी नग्न होत है,
चीर दुसासन तान।

प्रकटत है पूरब की करनी,
तज मन सोच अजान।
सूरदास गुण कहं लग बरनों,
विधि के अंक प्रमान।

नाथ मोहे अब की बेर उबारो

नाथ मोहे अब की बेर उबारो।

तुम नाथन के नाथ सुवामी,
दाता नाम तिहारो।
करमहीन जन्म को अन्धो,
मोतें कौन नकारो।

तीन लोक तुम प्रतिपालक,
मैं हूं दास तिहारो।
तारी जाति कुजाति स्याम तुम,
मो पर किरपा धारो।

पतितन में इक नायक कहिये,
नीचन में एक सरदारो।
कोटि पाप इक पासंग मेरे,
अजामिल कौन बिचारो।

नाठो धरम नाम सुन मेरो,
नरक दियो हठि तारो।
मोको ठौर नहीं अब कोऊ,
अपनी बिरद सम्हारो।

छुद्र पतित तुम तारे रमापति,
अब न करो जिय गारो।
सूरदास सांची तब माने,
जो डूबे मम निस्तारो।

तुम मेरी राखो लाज हरी

तुम मेरी राखो लाज हरी।
तुम जानत सब अन्तरजामी,
करनी कछु न करी।
तुम मेरी राखो लाज हरी।

औगुन मोते बिसरत नाहीं,
पल छिन घरी-घरी।
सब प्रपंच की पोट बांधि कै,
अपने सीस धरी।

दारा-सुत-धन मोह लिए हैं,
सुधि-बुधि सब बिसरी।
सूर पतित को वेग उधारो,
अब मेरी नाव भरी।

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तनु तरुवर के
सबै पात झरि जैहैं।
जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।

घर के कहिहैं बेगिहिं काढ़ो,
भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी,
सोऊ देखि डरैहैं।

कहं वह ताल कहां वह सोभा,
देखत धूरि उड़ैहैं।
भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला,
सुमिर सुमिर पछितैहैं।

बिना गुपाल कोउ नहिं अपनो,
जस कीरति रहि जैहैं।
सो तो सूर दुर्लभ देवन को,
सन्त-संगति महं पैहैं।

दीनानाथ अब बार तुम्हारी

दीनानाथ अब बार तुम्हारी।
पतित उधारन बिरद जानिकै,
बिगरी लेहु संभारी।
दीनानाथ अब बार तुम्हारी।

बालापन खेलत ही खोयो,
जुवा विषय रस माते।
वृद्ध भयो सुधि प्रगटी मोको,
दुखित पुकारत ताते।

सुतनि तज्यो, तिय तज्यो,
भ्रात तजि तन त्वच भई जु न्यारी।
स्रवन न सुनत चरनगति थाकी,
नैन भये जल धारो।

पतित केस कफ-कंठ विरोध्यौ,
कल न परी दिन-राती।
माया मोह न छांड़ै तृस्ना,
ए दोऊ दुःख दाती।

अब या ब्यथा दूर करिबै को,
और न समरथ कोई।
सूरदास प्रभु करुनासागर
तुमते होइ सो होई।

सबसों ऊंची प्रेम सगाई

सबसों ऊंची प्रेम सगाई।
दुर्योधन की मेवा त्यागे,
साग बिदुर घर खाई।
सबसों ऊंची प्रेम सगाई।

जूंठे फल सबरी के खाये,
बहु विधि स्वाद बताई।
प्रेम बस नृप सेवा कीन्हीं,
आप बने हरि नाई।

राजसू-जग्य जुधिष्ठिर कीन्हों,
तामें जूंठ उठाई।
प्रेम के बस पारथ रथ हांक्यो,
भूलि गए ठकुराई।

ऐसी प्रीति बढ़ी बृन्दाबन,
गोपिन नाच नचाई।
सूर कूर इहि लायक नाहीं,
कहं लगि करौं बड़ाई।

हरि बिन को राखे पति मेरी

हरि बिन को राखे पति मेरी।
अन्ध को अन्ध महा दुस्सासन।
आन सभा में घेरी।
हरि बिन को राखे पति मेरी।

भीष्म द्रोण कर्ण से बैठे,
इनहूं नेक न हेरी।
हरि बिनं को राखे पति मेरी।

अब मति भ्रष्ट भई सबहिन की,
पकर लई ज्यों चेरी।
हरि बिन को राखे पति मेरी।

एक विश्वास यही दृढ़ मेरे,
कृष्ण कृष्ण कह टेरी।
हरि बिन को राखे पति मेरी।

'सूरदास' प्रभु वसन बढ़ाये,
है गयौ पर्वत ढेरी।
हरि बिन को राखे पति मेरी।

हरि सों मीत न देखौ कोई

हरि सों मीत न देखौ कोई।
अन्तकाल सुमिरत तेहि अवसर।
आनि प्रतिच्छो होई।
हरि सों मीत न देखौ कोई।

ग्राह गहे गजपति मुकरायो,
हाथ चक्र लै धायो।
तजि बैकुंठ गरुड़ तजि श्री तजि
निकट दास के आयो।

दुरबासा को साप निवार्‍यो
अंबरीष पति राखी।
ब्रह्मलोक परजंत फिर्‍यो
तहं देव मुनीजन साखी।

लाखागृह तें जरत पांडु सुत
बुधि बल नाथ उबारे।
सूरदास प्रभु अपने जन के
नाना त्रास उबारे।

हरि बिन कौन दरिद्र हरै

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि,
जिय मिलन न हरि बिसरै।
हरि बिन कौन दरिद्र हरै।

और मित्र ऐसे कुसमै महं,
कत पहिचान करै।
विपति परै कुसलात न बूझै,
बात नहीं उचरै।

उठिके मिले तंदुल हम दीन्हें,
मोहन बचन फुरै।
सूरदास स्वामी की महिमा,
विधि टारी न टरै।

तुम हरि सांकरे के साथी

तुम हरि सांकरे के साथी।
सुनत पुकार परम आतुर है, दौरि छुड़ायो हाथी।
तुम हरि सांकरे के साथी।

गर्भ परिच्छित रच्छा कीन्हीं, वेद उपनिषद साखी।
बसन बढ़ाय द्रुपद-तनया के, सभा मांझ पत राखी।

राज रमनि गाई ब्याकुल हुए, दै दै सुतका धीरक।
मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर-पीरक।

कपट स्वरूप धर्‍यो जब कोकिल नृप प्रतीत करि मानी।
कठिन परी तबहीं तुम प्रगटे रिपु हति सब सुखदानी।

ऐसे कहौं कहां लौं गुणगण लिखत अन्त नहिं पइयै।
कृपासिन्धु उनही के लेखे मम लज्जा निरवहियै।

सूर तुम्हारी ऐसी निबही संकट के तुम साथी।
ज्यों जानौ त्यों करौ दीनकी बात सकल तुम हाथी।

मैया री मोहिं माखन भावै

मैया री मोहिं माखन भावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई,
मोहिं नहीं रुचि आवै।
मैया री मोहिं माखन भावै।

ब्रज जुवती इक पीछे ठाढ़ी,
सुनति स्याम की बातें।
मन मन कहति कबहुं अपने,
घर देखौं माखन खातें।

बैठे जाय मथनियां के ढिंग,
मैं तब रहौं छिपानी।
सूरदास प्रभु अन्तरजामी,
ग्वालि मनहिं की जानी।

सोई रसना जो हरि गुन गावै

सोई रसना जो हरि गुन गावै।
नैनन की छबि यहे चतुरता,
ज्यों मकरंद मुकुंदहि ध्यावै।
सोई रसना जो हरि गुन गावै।

निर्मल चित सौ सोई सांचो,
कृष्ण बिना जिय और न भावै।
स्रवनन की जु यहै अधिकाई,
सुनि हरि-कथा सुधारस प्यावै।

कर तेई जे स्यामहिं सेवै,
चरननि चलि वृन्दावन जावै।
सूरदास जयै बलि जाके,
जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावै।

रे मन जन्म पदारथ जात

रे मन जन्म पदारथ जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब है हैं, ज्यों तरुवर के पात।
रे मन जन्म पदारथ जात।

सन्निपात, कफकंठ विरोधी, रसना टूटी जात।
प्राण लिए जम जात मूंढ़मति, देखत जननी तात।
रे मन जन्म पदारथ जात।

छिन इक मांहि कोटि जुग बीतत, फेरि नरक की बात।
यह जग प्रीति सुआ सेमर की, चाखत ही उड़ि जात।
रे मन जन्म पदारथ जात।

जम के फन्द नहीं पड़ बौरे, चरनन चित लगात।
कहत सूर बिरथा यह देही, अन्तर क्यों इतरात।
रे मन जन्म पदारथ जात।

हरि हौं बड़ी बेर की ठाढ़ो

हरि हौं बड़ी बेर की ठाढ़ो।
जैसे और पतित तुम तारे, तिनहिन महं लिखि काढ़ो।
हरि हौं बड़ी बेर की ठाढ़ो।

जुग जुग बिरद यही चलि आयो टेर कहत हौं ताते।
मरियत लाज पंच पतितन में हौं धर कहौं कहां ते।

कै अब हार मानिकर बैठे कै करूं बिरदि सही।
सूर पतित जो झूठ कहत है देखो खोल बही ॥

जागिये ब्रजराज कुंवर

जागिये ब्रजराज कुंवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद-बृन्द सकुचित भये भृंगु लता झूले॥

तमचुर[1] खग रौर सुनहुं बोलत बनराई।
रांभति गौ खरिकन में बछरा हित धाई॥

विधु[2] मलिन रवि प्रकाश गावत नर-नारी।
सूर स्याम प्रात उठौ अंबुज[3] कर धारी॥

---

1. मुर्ग़ा, 2. चन्द्रमा, 3. कमल।

सबै दिन गए विषय के हेत

सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनों पन ऐसे ही बीते,
केस भये सिर सेत ॥
सबै दिन गए विषय के हेत।

आंखिन अन्ध स्रवन नहिं सुनियत,
थाके चरन समेत।
गंगाजल तज पियत कूप जल,
हरि तजि पूजत प्रेत ॥

रामनाम बिनु क्यों छूटोगे,
चन्द्र गहे ज्यों केत।
सूरदास कछु खरच न लागत,
रामनाम मुख लेत ॥

बन तै आवत धेनु चराए

बन तै आवत धेनु चराए।
सन्ध्या समय सांवरे मुख पर,
गो - पद - रज लपटाए।
बरह[1]-मुकुट कै निकट लसनि लट,
मधुप मनौ रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलज[2]-आनन पर,
उड़त न जात उड़ाए।
बिधि-बाहन-भच्छन[3] की माला,
राजत उर पहिराए।
मनहुं नील घन पर बाग[4] पंगति,
सोभित पंख फुलाए।
एक बरन बपु[5] नहिं बड़ छोटे,
ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की,
जीबत जन जस गाए।

1. मोर, 2. कमल, 3. मोती, 4. बगुला, 5. शरीर।

खेलन दूरि जात कत कान्हा

खेलन दूरि जात कत कान्हा?
आज सुन्यौ मैं हाऊ आयौ,
तुम नहिं जानत नान्हा।
इक लरिका अबहीं भजि आयौ,
रोवत देख्यौ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबिन के,
लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सबारैं, जैये,
भाजि अपने धाम।
सूर स्याम यह बात सुनत ही,
बोलि लिए बलराम।

चोरी करत कान्ह धरि पाए

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहिं बहुत सतायौ,
अब हरि हाथहिं आए।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ,
बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तो घात परे हौ लालन,
तुम्है भलैं मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहं जेहौ,
माखन लेउं मंगाइ।
तेरी सौं मैं नैंकु न खायौ,
सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै, बिहंसि हरि दीन्हौ,
रिस[1] तब गई बुझाइ।
लियो स्याम उर लाइ ग्वालिनी,
सूरदास बलि जाइ।

1. क्रोध।

मैया, मैं तो चन्द खिलौना लैहौं

मैया, मैं तो चन्द खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अब हीं,
तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभी[1] कौ पय[2] पान न करिहौं,
बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वै हौं पूत नन्द बाबा कौ,
तेरौ सुत न कहैहौं।
आगै आउ, बात सुनि मेरी,
बलदेवहिं न जनैहौं।
हंसि समुझावति, कहति जसोमति,
नई दुलहिया देहौं।
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया,
अबहिं बिहायन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती,
गीत सुभमंगल गैहौं।

1. गाय, 2. दूध

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द कै आंगन,
बिंब पकरिबैं धावत।
कबहुं निरखि हरि आपु छांह कौं,
कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हंसत राजत द्वै दतियां,
पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक भूमि पर कर-पग-छाया,
यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा,
कमल बैठकी साजति।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा,
पुनि-पुनि नन्द बुलावति।
अंचरा तर लै ढांकि,
सूर के प्रभु कौं दूध पियावति।

सिखबत चलन जसोदा मैया

सिखबत चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत,
डगमगाइ धरनी धरे पैया।
कबहुंक सुन्दर बदन बिलोकति,
उर आनन्द भरि लेति बलैया।
कबहुंक कुल-देवता मनावति,
चिरजीवहु मेरौ कुंवर कन्हैया।
कबहुंक बल कौं टेरि बुलावति,
इहिं आंगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला,
अति प्रताप बिलसत नंदरैया।

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
जो मन मैं अभिलाष करति ही,
सो देखति नन्द-घरनी[1]।
रुनुक-झुनुक नूपुर पग बाजत,
धुनि अतिहीं मनहरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरतहीं,
सो छबि जाइ न बरनी।
ब्रज-जुवती सब देखि थकित भईं,
सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवहु जसुदा कौ नन्दन,
सूरदास कौ तरनी[2]।

1. यशोदा, 2. नाव।

कहन लागे मोहन मैया-मैया

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नन्द महर सौं बाबा-बाबा,
अरु हलधर[1] सौं भैया।
ऊंचे चढ़ि-चढ़ि कहत जसोदा,
लै-लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे,
मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल,
घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं,
चरननि की बलि जैया।

1. बलदेवजी (कृष्ण के भ्राता)

रुदन करति वृषभानु-कुमारी

रुदन करति वृषभानु-कुमारी।
बार-बार सखियन उरलावति,
कहां गए गिरिधारी।
कबहूं गिरति धरन पर ब्याकुल,
देखि दसा ब्रजनारी।
भरि अंकबारि धरतिं, मुख पोंछतिं,
देति नैन जल ढारी।
त्रिया पुरुष सौं भाव करति है,
जाने निठुर मुरारी।
सूर स्याम कुल-धरम आपनौ,
लए रहत बनवारी।

मैं कैसैं रस रासहिं गाऊं

मैं कैसैं रस रासहिं गाऊं।
श्री राधिका स्याम की प्यारी,
कृपा बास ब्रज पाऊं।
आन देव सपनेहुं न जानौ,
दम्पति कौं सिर नाऊं।
भजन-प्रताप, चरन महिमा तैं,
गुरु की कृपा दिखाऊं।
नव निकुंज बन-धाम-निकट इक,
आनन्द कुटी रचाऊं।
सूर कहा बिनती करि बिनवै,
जनम-जनम यह ध्याऊं।

देखि सखी ब्रज तैं बन जात

देखि सखि ब्रज तैं बन जात।
रोहिनिसुत[1], जसुमति-सुत की छवि,
गौर, स्याम हरि-हलधर-गात।
नीलाम्बर पीताम्बर ओढ़े,
यह सोभा कछु कही न जात।
जुगल जलज[2] जुगतड़ित[3] मनहुं मिलि,
अरस-परस जोरत हैं नात।
सीस मुकुट मकराकृत कुंडल,
झलकत बिबिध कपोलनि भांति।
मनहु जलद[4]-जुग पास जुगल रबि,
ता पर इन्द्र धनुष की कान्ति।
कटि कछनी कर लकुट मनोहर,
गो-चारन चले मन अनुमानि।
ग्वाल सखा विच [illegible] नन्द-नन्दन,
बोलत बचन मधुर मुसुकानि।
चितै रहीं ब्रज की जुबती सब,
आपुस ही में करत विचार।
गोधन-बृन्द लिए भूरज-प्रभु,
बृन्दाबन गए करत बिहार।

---

1. बलदेव, 2. कमल, 3. बिजली, 4. बादल।

अधर-रस मुरली लूटन लागी

अधर-रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौं षट रितु तप कीन्हौ,
सो रस पियत सभागी।
कहां रही, कहं तैं इहं आई,
कौनैं याहि बुलाई?
चकित भई कहतिं ब्रजबासिनि,
यह तो भली न आई।
सावधान क्यों होतिं नहीं तुम,
उपजी बुरी बलाइ।
सूरदास प्रभु हमपर ताकौं,
कीन्हौ सौति बजाइ।

सुनहु री मुरली की उतपत्ति

सुनहु री मुरली की उतपत्ति।
बन में रहति बांस कुल याकौ,
यह तौ याकी जाति।
जलधर[1] पिता, धरनि है माता,
अवगुन कहौं उघारि।
बनहूं तैं याकौ घर न्यारौ,
निपटहिं जहां उजारि।
इक तैं एक गुननि हैं पूरे,
मातु पिता और आपु।
नहिं जानियै कौन फल पगट्यौ,
अतिहीं कृपा प्रतापु।
बिसवासिन परकाज न जानैं,
याके कुल कौ धर्म।
सुनहु सूर मेघनि की करनी,
अरु धरनी के कर्म।

1. बादल।

सजनी स्याम सदाई ऐसे

सजनी स्याम सदाई ऐसे।
एक अंग की प्रीति हमारी,
वे जैसे के तैसे।
ज्यौं चकोर चन्दा कौं चाहै,
चन्दा नैंकु न मानै।
जल कैं तीर मन तन त्यागै,
नीर निठुर नहिं जानै।
ज्यौं पतंग उड़ि परै ज्योति तकि,
वाके नैंकु न भायें।
चातक रटि-रटि जनम गंवावै,
जल वै डारत खायें।
उनहूं तैं निर्दयी बड़े वै,
तैसिये मुरली पाई।
सूर स्याम जैसे तैसी वह,
भली बनी अब माई।

अधर रस मुरली लूट करावति

अधर रस मुरली लूट करावति।
आपुन बार-बार लै अंचवति,
जहां - तहां ढरकावति।
आजु महा चढ़ि बाजी बाकी,
जोइ जोइ करै बिराजै।
करि सिंहासन बैठि, अधर-सिर,
छत्र धरे यह गाजै।
गनति नहीं अपनैं बल काहुहिं,
स्यामहिं ढीठि कराई।
सुनहु सूर बन की बस बासिनि,
ब्रज मैं भई रजाई।

नटवर-वेष धरे ब्रज आवन

नटवर-वेष धरे ब्रज आवन।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल,
कुटिल अलक मुख पर छवि पावत।
भ्रकुटी बिकट नैन अति चंचल,
इहि छबि पर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खंजन बिब[1] डरपत,
उड़ि न सकत उड़िबै अकुलावत।
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत,
गौरी राग अलापि बजावत।
सुरभी-बृंद[2] गोप बालक संग,
गावत अति आनन्द बढ़ावत।
कनक-मेखला कटि पीताम्बर,
निर्तत मन्द-मन्द सुर गावत।
सूर स्याम प्रति-अंग माधुरी,
निरखत ब्रज-जन कैं मन भावत।

1. दो, 2. गायों का समूह।

घट भरि दियौ स्याम उठाइ

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैंकु तन की सुधि न ताकौं,
चली ब्रज - समुदाइ।
स्याम सुन्दर नैन भीतर,
रहे आन समाइ।
जहां-जहां भरि दृष्टि देखै,
तहां - तहां कन्हाइ।
उतहिं तै इक सखी आई,
कहति कहा भुलाइ।
सूर अबहीं हंसत आई,
चली कहां गवांइ।

यह कमरी कमरी करि जानति

यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय में,
सो तितनौ अनुमानति।
या कमरी के एक रोम पर,
वारौं चीर पटंबर।
सो कमरी तुम निंदित गोपी,
तो तिहुं लोक अडम्बर।
कमरी कैं बल असुर संहारे-
कमरहिं तैं सब भोग।
जाति-पांति कमरी सब मेरी,
सूर सबै यह जोग।

को माता को पिता हमारैं

को माता को पिता हमारैं।
कब जनमत हमकौं तुम देख्यौ,
हंसियत बचन तुम्हारैं।
कब माखन चोरी करि खायो,
कब बांधे महतारी।
दुहत कौन कौ गैया चारत,
वाम कही यह भारी।
तुम जानत मोहिं नन्द-ढुटौना,
नन्द कहां तैं आए।
मैं पूरन अबिगत, अबिनासी,
माया सबिन भुलाए।
यह सुनि ग्वालि सबै मुसुक्याने।
ऐसे गुन हो जानत।
सूर स्याम जो निदर्‌यौ सबहीं,
मात-पिता नहिं मानत।

माखन दधि हरि खात ग्वाल-संग

माखन दधि हरि खात ग्वाल-संग।
पातनि के दोना सब लै-लै,
पतुखिनि मुख मेलत रंग।
मटुकिनि तें लै-लै परूसति हैं,
हरष भरी ब्रज - नारी।
यह सुख तिहूं भुवन कहूं नाहीं,
दधि जेंवत बनवारी।
गोपी धन्य कहतिं आपुन कौं,
धन्य दूध - दधि - माखन।
जाकौं कान्ह लेत मुख मेलत,
सबनि कियौ संभाषन।
जौ हम साध करतिं अपनै मन,
सो सुख पायौ नीकैं।
सूर स्याम पर तन - मन वारतिं,
आनन्द जी सबही कैं।

राधा सौं माखन हरि मांगत

राधा सौं माखन हरि मांगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ,
तुम्हरौ कैसौ लागत।
लै आई वृषभानु-सुता,
हंसि सद लवनी[1] है मेरौ।
लै दीन्हौं अपनैं कर हरि-मुख,
खात अल्प हंसि हेरौ।
सबहिनि तैं मीठौ दधि है यह,
मधुरै कह्यौ सुनाइ।
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ,
ब्रज ललना मन माइ।

1. माखन।

कंस-हेतु हरि जन्म लियौ

कंस-हेतु हरि जन्म लियौ।
पापहिं पाप धरा भई भारी,
तब सुरनि[1] पुकार कियौ।
सेन-सैन जहं रमा संग मिलि,
तहं अकास भई बानी।
असुर मारि भुव-भार उतारौं,
गोकुल प्रगटौं आनी।
गर्भ देवकी कै तनु धरिहौं,
जसुमति कौ पय पीहौं।
पूरब तप बहु कियौ कष्ट करि,
इनको बहुत रिनी हौं।
यह बानी कहि सूर सुरनि औं,
अब कृष्ना अवतार।
कह्यौ सबनि ब्रज जन्म लेहु संग,
मेरैं करहु बिहार।

1. देवताओं।

यह महिमा येई पै जानैं

यह महिमा येई पै जानैं।
जोग-जज्ञ-तप ध्यान न आवत,
सो दधि-दान लेत सुख मानैं।
खात परस्पर ग्वालिनि मिल कै,
मीठौ कहि-कहि आपु बखानैं।
बिस्वंभर जगदीस कहावत ते,
दधि दोना मांझ अघाने।
आपुहिं करता, आपुहिं हरता,
आपु बनावत, आपुहिं भानैं।
ऐसे सूरदास के स्वामी,
ते गोपिनि कै हाथ बिकाने।

या घर में कोउ है कैं नाहीं

या घर में कोउ है कैं नाहीं।
बार-बार बूझति वृच्छनि कौं,
गोरस लेहु कि जाहीं।
आपुहिं कहति लेति नाहीं दधि,
और द्रुमनि तर जाति।
मिलतिं परस बबस देखि तिहिं,
कहति कहा इतराति।
ताकौं कहति, आपु सुधि नाहीं,
सो पुनि जानति नाहीं।
सूर स्याम रस-भरी गोपिका,
बन मैं यौं बितताहीं।

पलक-ओट नहिं होत कन्हाई

पलक-ओट नहिं होत कन्हाई।
घर गुरुजन बहुतै विधि त्रासत,
लाज करावत, लाज न आई।
नैन जहां दरसत हरि अंटके,
स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और नहीं कछु भाषति,
स्याम-स्याम रट इहै लगाई।
चित चंचल संगहिं संग डोलत,
लोक - लाज - मरजाद मिटाई।
मन हर लियौ सूर-प्रभु तबहीं,
तन बपुरे को कहा बसाई।

दधि-मटुकी सिर लिए ग्वालिनी

दधि-मटुकी सिर लिए ग्वालिनी,
कान्ह-कान्ह करि डोलै री।
बिबस भई तनु-सुधि न सम्हारै,
आपु बिकी बिन मौलै री।
जोइ-जोइ पूछे यामैं है कह,
लेहु-लेहु कहि बोलै री।
सूरदास प्रभु रस-बस ग्वालिनी,
बिरह भरी फिरै टोलै री ॥

हरि देखैं बिनु कल न परै

हरि देखैं बिनु कल न परै।
जा दिन तैं वे दृष्टि परे हैं,
क्यौं हूं चित उनतै न टरै।
नव कुमार मनमोहन,
ललना-प्रान-जिवनधन क्यौं बिसरै।
सूर गुपाल-सनेह न छांड़े,
देह-सुरति सखि कौन-कौन करै।

तब नागरि मन हरष भई

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ,
अति आनन्द भई।
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति,
काहैं भूलि गई।
को माता को पिता, बन्धु को,
यह तौ भेंट नई।
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला,
प्यारी जानि लई।
सूरदास प्रभु की यह महिमा,
यातैं बिबस भई।

सुनि राधे तोहिं स्याम दिखैहैं

सुनि राधे तोहिं स्याम दिखैहैं।
जहां तहां ब्रज-गलिनि फिरत हैं,
जब इहिं मारग ऐहैं।
जबहीं हम उनकौं दिखैंगी,
तबहीं तोहिं बुलैहैं।
उनहूं कैं लालसा बहुत यह,
तोहि देखि सुख पैहैं।
दरसन तैं धीरज जब रैहै,
तब हम तोहिं पत्यैहैं।
तुमकौं देखि स्याम सुन्दर घन,
मुरली मधुर बजैहैं।
तनु त्रिभंग करि अंग-अंग सौं,
नाना भाव जनैहैं।
सूरदास प्रभु नवल कान्ह बर,
पीताम्बर फहरैहैं।

उपमा हरि-तनु देखि लजानी

उपमा हरि-तनु देखि लजानी।
कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि,
कोउ कोउ गगन समानी।
मुख निरखत ससि गयौ अम्बर कौं,
तड़ित दसन-छबि हेरी।
मीन कमल, कर, चरन, नयन डर,
जल मैं कियौ बसेरि।
भुजा देखि अहिराज लजाने,
बिबरनि पेठे धाइ।
कटि निरखति केहरि डर मान्यौ,
बन - बन रहे दुराइ।
गारी देहिं कबिनि कै बरनत,
श्री-अंग पटतर देत।
सुरदास हमकौं सरमावत,
नाउं हमारौ लेत।

ता दिन तैं हरि दृष्टि परे री

ता दिन तैं हरि दृष्टि परे री।
ता दिन तैं मेरे इन नैननि,
दुख सुख सब बिसरे री।
मोहन अंग गुपाल लाल के,
प्रेम-पियूष[1] भरे री।
बसे उहां मुसुकानि-बांह लै,
रचि रुचि-भवन करे री।
पठवति हौं मन तिनहिं मनावन,
निसिदिन रहत अरेरी।
ज्यों ज्यों जतन करति उलटावति,
त्यौं त्यौं हठत खरेरी।
पचिहारी समुझाइ ऊंच-निच,
पुनि-पुनि पाइ परे री।
सो सुख सूर कहां लौं बरनौं,
इक टक तैं न टरे री।

1. अमृत।

स्याम करत हैं मन की चोरी

स्याम करत हैं मन की चोरी।
कैसें मिलत आनि पहिलैं ही,
कहि-कहि बतियां भोरी।
लोक-लाज की कानि गंवाई,
फिर गुड़ी[1] बस डोरी।
ऐसे ढंग स्याम लब सीख्यौ,
चोर भयौ चित कौ री।
माखन की चोरी सहि लीन्हीं,
बात रही वह थोरी।
सूर स्याम भयौ निडर तबहिं तैं,
गोरस लेत अंजोरी।

1. पतंग।

भींजत कुंजनि मैं दोउ आवत

भींजत कुंजनि मैं दोउ आवत।
ज्यौं-ज्यौं बूंद परतिं चूनर पर,
त्यौं-त्यौं हरि उर लावत।
तैसें मोर कोकिला बोलत,
पवन बीजु घन धावत।
लै मुरली कर मन्द घोर सुर,
राग मलार बजावत।
अधिक झकोर जबैं मेघनि की,
द्रुम तिरछनि बिरमावत।
वै हंसि ओट करत पीताम्बर,
ये चूनरी उढ़ावत।
भींजे राग रागिनी दौऊ,
भीजैं जल छबि पावत।
सूरदास प्रभु रीझि परस्पर,
प्रीति अधिक उपजावत।

कबहुं स्याम जमुना तट जात

कबहुं स्याम जमुना तट जात।
कबहुं कदम चढ़त मग देखत,
राधा बिनु अतिहीं अकुलात।
कबहुं जात बन कुंज-धाम कौं,
देखि रहत नहिं कछू सुहात।
तब आवत वृषभानु-पुरी कौं,
अति अनुराग भरे नंद-तात।
प्यारी हृदय प्रगटहीं जानति,
तब वह मनहीं मांझ सिहात।
सूरदास नागरि के उर मैं,
निवसे नागर स्यामल गात।

नैना हाथ न मेरैं आली

नैना हाथ न मेरैं आली।
इत है गए ठगौरी लावत,
सुन्दर कमल-नैन बनमाली।
बे पाछें आगैं धाए,
मैं बरजति बरजति पचिहारी।
मेरैं तन वै फेरि न चितए,
आतुरता वह कहौं कहा री।
जैसैं बरत भवन तजि भजियै,
तेसेहिं गए फेरि नहिं हेरौ।
सूर स्याम-रस रसे रसीले,
पय पानी को करै निबेरौ।

नैना नैननि मांझ समाने

नैना नैननि मांझ समाने।
टारें टरत न इक पल मधुकर,
ज्यौं रस मैं अरुझाने।
मन गति पंगु भई सुधि बिसरी,
प्रेम - पराग लुभाने।
मिले परस्पर खंजन मानौ,
झगरत निरखि लजाने।
मन बच क्रम पल-ओटन भावत,
छिनु छिनु जुग परमाने।
सूर स्याम के बस्य भए ये,
जिहिं बीतै सौ जानै।

जबहिं रथ अक्रूर चढ़े

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े।
तब रसना हरि नाम भाष कै,
लोचन नीर बढ़े।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ,
तरु ज्यौं धरनि लुटाइ।
देखतिं नारि चित्र सी ठाढीं,
चितये कुंवर कन्हाइ।
इतनैं हिं मैं सुख दियौ सबनि कौं
दीन्हीं अबधि बताइ।
तनक हंसे, हरि मन जुवतिन कौं,
निठुर ठगौरी लाइ।
बोलतिं नहीं रहीं सब ठाढ़ी,
स्याम - ठगी ब्रज - नारी।
सूर तुरत मधुबन पग धारे,
धरनी के हितकारि।

जै जै धुनि तिहुं लोक भई

जै जै धुनि तिहुं लोक भई।
मार्‍यौ कंस धरनि उद्धार्‍यौ,
ओक - ओक[1] आनन्दमई।
रजक मारि को दंड विभंज्यौ,
खेल करत गज प्रान लियौ।
मल्ल पछारि असुर संहारे,
तुरत सबनि सुरलोक दियौ।
पुर-नर-नारिनि कौं सुख दीन्हौं,
जो जैसौ फल सोइ लह्यौ।
सूर धन्य जदुबंस उजागर,
धन्य-धन्य धुनि घुमरि रह्यौ।

---

1. चौदहों भुवनों में।

हों तो माई मथुरा पै जैहौं

हों तो माई मथुरा पै जैहौं।
दासी है बसुदेव राइ की,
दरसन देखत रैहौं।
राखि राखि एते दिवसनि मोहिं,
कहा कियौ तुम नीकौ।
सोऊ तौ अक्रूर गए लै,
तनक खिलौना जी कौ।
मोहिं देखि कै लोग हंसैंगे,
अरु किन कान्ह हंसै।
सूर असीम जाइ दहौं,
जनि न्हातहु बार खसै।

सखी इन नैननि तैं घन हारे

सखी इन नैननि तैं घन हारे।
बिनहीं रितु बरसत निसि बासर,
सदा मलिन दोउ तारे।
ऊरध स्वास समीर तेज, अति,
सुख अनेक द्रुम डारे।
बदन सवन करि बसे बचन-खग,
दुख पावस के मारे।
दुरि दुरि बूंदि परत कंचुकि पर,
मिलि अंजन सौं कारे।
मानौ परनकुटी सिव कीन्ही,
बिबि मूरति धरि न्यारे।
घुमरि घुमरि बरसत जल छांड़त,
उर लागत अंधियारे।
बूड़त ब्रजहिं सूर को राख,
बिनु गिरिवरधर प्यारे।

हौं इक नई बात सुनि आई

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा[1] जायौ,
घर-घर होति बधाई।
द्वारैं भीर गोप-गोपिनि की,
महिमा बरनि न जाई।
अति आनन्द होत गोकुल मैं
रतन भूमि सब छाई।
नाचत बुद्ध, तरुन अरु बालक,
गोरस - कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख-सागर,
सुन्दर स्याम कन्हाई।

1. पुत्र।

जसोदा हरि पालनैं झुलावै

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै,
जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया,
काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै,
तोकौ कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूंद लेत हैं,
कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है कै रहि,
करि-करि सैन बतावै।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि,
जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर[1]-मुनि दुरलभ,
सो नन्द भामिनि पावै।

1. देवता।

नैंकु गोपालहिं मोकौं दैं री

नैंकु गोपालहिं मोकौं दैं री।
देखौं बदन[1] कमल नीकैं करि,
ता पाछैं तू कनियां[2] लै री।
निति कोमल कर चरन-सरोरुह[3],
अधर-दसन[4]-नासा सोहै री।
लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत,
मनमथ कोटि वारनैं गै री।
बासर-निसा[5] बिचारति हौं सखि,
यह सुख कबहुं न पायौ मैं री।
निगमनि-धन, सनकादिक-सरबस,
बड़े भाग्य पायौ है तैं री।
जाकौ रूप जगत के लोचन,
कोटि चन्द्र-रवि लाजत भै री।
सूरदास बलि जाइ जसोदा,
गोपिनि-प्रान, पूतना बैरी।

1. मुख, 2. गोद, 3. कमल, 4. दांत, 5. दिन-रात।

हरि किलकत जसुदा की कनियां[1]

हरि किलकत जसुदा की कनियां।
निरखि-निरखि मुख कहति लाल सौं,
मो निधनी के धनियां।
अति कोमल तन चितै स्याम कौ,
बार-बार पछितात।
कैसैं बच्यौ जाउं बलि तेरी,
तृनावर्त कैं घात।
ना जानौं धौं कौन पुन्य तैं,
को करि लेत सहाइ।
वैसौ काम पूतना कीन्हौ,
इहिं ऐसो कियौ आइ।
माता दुखित जानि हरि विहंसे,
नान्ही दंतुलि दिखाइ।
सूरदास प्रभु माता चित तैं,
दुःख डार्यौ बिराइ।

1. गोदी।

सोभित कर नवनीत[1] लिए

सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरुनि चलत रेनु[2]-तन-मंडित,
मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल[3] लोचन,
गोरोचन - तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप[4]-गन,
मादक मधुहिं पिए।
कठुला-कंठ, बज्र के हरि-नख,
राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख,
का सत कल्प जिए।

1. मक्खन, 2. धूल, 3. चंचल, 4. भौंरा।

मैया हौं न चरैंहौं गाइ

मैया हौं न चरैंहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं,
मेरे पाइ पिराइं।
जो न पत्याहि पूछि बलदाउहिं,
अपनी सौंह[1] दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि,
गारी देत रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं,
आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक,
मारत ताहि रिंगाइ।

1. शपथ।

उरग[1]-नारि सब कहतिं परस्पर

उरग-नारि सब कहतिं परस्पर,
देखौ या बालक की बात।
विष-ज्वाला जल जरत जमुन कौ,
याकैं तन लागत नहिं तात।
यह कुछ तंत्र मंत्र जानत है,
अतिहीं सुन्दर कोमल गात।
यह अहिराज महा बिष ज्वाला,
कितने करत सहन फन घ्रात।
छुवत नहीं तनु यकौ विष कहुं,
अब लौं बच्यौ पुण्य पितु-मात।
सूर स्याम सो दाऊं बतायौ,
काली अंग लपेटत जात।

1. नाग।

जब हरि मुरली अधर धरत

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पबन थकित रहैं,
जमुना - जल न बहत।
खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं,
निरखि मदन[1]-छबि छरत।
पसु मोहैं, सुरभी विथकित,
तृन दंतनि टेकि रहत।
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं,
ध्यान न तनक गहत।
सूरदास भाग हैं तिनके,
जे या सुखहिं लहत।

1. कामदेव।

मुरली तऊ गुपालहिं भावति

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नंदलालहिं,
नाना भांति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि,
अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति,
कटि टेढ़ी ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौड़े,
गिरधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा पर,
कर - पल्लव पलुटावति।
भृकुटि कुटिल, नैन नासा-पुट,
हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन,
धर तैं सीस डुलावति।

बूझत स्याम कौन तू गोरी

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति, काकी है बेटी,
देखी नहीं कहूं ब्रज-खोरी[1]।
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं,
खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्रवननि नंद - ढोटा,
करत फिरत माखन-दधि-चोरी।
तुम्हारी कहा चोरि हम लैहैं,
खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक - सिरोमनि,
बातनि भुरइ राधिका भोरी।

1. गली।

खेलन कैं मिस कुंवरि राधिका

खेलन कैं मिस कुंवरि राधिका,
नंद-महरि कैं आई।
सकुच सहित मधुरे करि बोली,
घर हौ कुंवर कन्हाई।
सुनत स्याम कोकिल सम बानी,
निकसे अति चतुराई।
माता सौं कछु करत कलह हे,
रिस डारी बिसराई।
मैया री तू इनकौ चीन्हति,
बारंबार बताई।
जमुना-तीर काल्हि मैं भूल्यौ,
बांह पकरि लै आई।
आवति इहां तोहिं सकुचति है,
मैं दै सौंह बुलाई।
सूर स्याम ऐसे गुन-आकर,
नागरि बहुत रिझाई।

भ्रमर-गीत

'भ्रमर-गीत' के अन्तर्गत सूरदास ने निर्गुण की तुलना में सगुण भक्ति की महिमा सिद्ध की है। यह प्रसंग इस प्रकार आया है कि कृष्ण कंस के बुलावे पर अक्रूर के साथ मथुरा गए और वहां कंस-वध कर वहीं बस गए। वहीं कुब्जा नाम की कंस की एक दासी की सेवा से प्रसन्न होकर कृष्ण उससे प्रेम करने लगे। उधर गोकुल में सब लोग (नन्द, यशोदा, गोपियां आदि) कृष्ण-वियोग में दुखी हो रहे थे। कृष्ण ने अपने सखा उद्धव को अपना दूत बनाकर गोकुल भेजा। कहा यह कि ज्ञान का उपदेश देकर गोपियों को प्रेम-मार्ग छोड़ देने के लिए समझाएं। असल में कृष्ण अपने इस ज्ञानमार्गी सखा उद्धव के ज्ञान का गर्व तोड़ना चाहते थे। वह जानते थे कि गोपियों के प्रेम की गरिमा देखकर उद्धव का ज्ञान पिघल जाएगा। हुआ भी यही। उद्धव ब्रज में पहुंचा तो ब्रजवासियों ने उसे घेर लिया। नन्द और यशोदा से कृष्ण का सन्देश कह देने के बाद वह गया गोपियों की तरफ़ और कृष्ण-सन्देश के नाम पर ज्ञान-चर्चा करने लगा। उसी बीच एक भंवरा उड़ता-उड़ता गोपियों के पास आ गया। और गोपियां उसी को सम्बोधित होकर अपने मन की भड़ास निकालने लगीं। इसी से इस प्रसंग के पदों को भ्रमर-गीत कहते हैं। इन पदों में गोपियां कभी तो उद्धव का नाम लेती हैं तो कभी जब कोई कठोर बात कहनी होती है तो भ्रमर का।

भ्रमर-गीत-सार

श्री कृष्ण का वचन उद्धव-प्रति

पहिले करि परनाम नन्द सों समाचार सब दीजो।
और वहां बृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजो॥
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो[1] भेंटियो।
सुख-संदेस सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियो॥
मंत्री इक बन बसत हमारो ताहि मिले सचु[2] पाइयो।
सावधान ह्वै मेरे हूतो ताही माथ नवाइयो॥
सुंदर परम किसोर बयक्रम चंचल नयन बिसाल।
कर मुरली सिर मोर पंख पीताम्बर उर बनमाल॥
जनि डरियो तुम सघन बनन में ब्रजदेवी रखवार।
बृन्दाबन सो बसत निरन्तर कबहुं न होत नियार[3]॥
उद्धति-प्रति सब कही स्यामजू अपने मन की प्रीति।
सूरदास किरपा करि पठए यहै सकल ब्रजरीति॥

उद्धव! बेगि ही ब्रज जाहु
सुरति सन्देश सुनाय मेटो बल्लभिन[4] को दाहु॥
काम पावक तूलमय तन बिरह-स्वास समीर।
भसम नाहिंन होन पावत लोचनन के नीर॥
अजौं लौं यहि भांति ह्वै है कछुक सजग सरीर।
इते पर बिनु समाधाने क्यों धरैं तिय धीर॥

---

1. ओर से, 2. सुख, 3. अलग 4. प्यारी।

कहौं कहा बनाय तुमसों सखा साधु प्रबीन?
सूर सुमति बिचारिए क्यों जियै जल बिनु मीन ॥

पथिक! संदेसौ कहियो जाय।
आवैंगे हम दोनों भैया, मैया जनि अकुलाय ॥
याको बिलगु[1] बहुत हम मान्यो जो कहि पठियो धाय[2]।
कहं लौं कीर्ति मानिए तुम्हरी बड़ो कियो पय प्याय ॥
कहियो जाय नन्दबाबा सों, अरु गहि पकर्‌यो पाय ॥
दोऊ दुखी होन नहिं पावहिं धूमरि धौरी[3] गाय ॥
यद्यपि मथुरा बिभव बहुत है तुम बिनु कछु न सुहाय।
सूरदास ब्रजबासी लोगनि भेंटत हृदय जुड़ाय ॥

नीके रहियो जसुमति मैया।
आवैंगे दिन चारि पांच में हम हलधर दोउ भैया ॥
जा दिन तें हम तुमतें बिछुरे काहु न कह्यो 'कन्हैया'।
कबहूं प्रात न कियो कलेवा, सांझ न पीन्हो[4] धैया[5] ॥
बंसी बेनु संभारि राखियो और अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका कछुक खिलौनो मेरो ॥
कहियो जाय नन्दबाबा सों निपट निठुर जिय कीन्हो।
सूर स्याम पहुंचाय मधुपुरी[6] बहुरि संदेस न लीन्हो ॥

उद्धव-प्रति कुब्जा के वाक्य

सुनियो एक संदेसो ऊधो तुम गोकुल को जात।
ता पाछे तुम कहियो उनसों एक हमारी बात ॥
मात-पिता को हेत जानि कै कान्ह मधुपुरी आए।

1. बुरा मानना, 2. दाई यशोदा ने कृष्ण के मथुरा आने पर देवकी के पास कहला भेजा था कि—'हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।' 3. सफ़ेद, 4. पी, 5. थन से सीधी छूटती दूध की धारा, 6. मथुरा।

नाहिंन स्याम तिहारे प्रीतम, ना जसुदा के जाए॥
समुझौ बूझौ अपने मन में तुम जो कहा भलो कीन्हो।
कहं बालक, तुम मत्त ग्वालिनी सबै आप बस कीन्हो॥
और जसोदा माखन-काजै बहुतक त्रास दिखाई।
तुमहिं सबै मिलि दांवरि दीन्हीं रंच[1] दया नहिं आई॥
अरु बृषभानुसुता जो कीन्हीं सो तुम सब जिय जानो।
याही लाज तजी ब्रज मोहन अब काहे दुख मानो?
सूरदास यह सुनि सुनि बातें स्याम रहे सिर नाई।
इत कुब्जा उत प्रेम ग्वालिनी कहत न कछु बनि आई॥

उद्धव का ब्रज में आना

कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेई पट, वैसिय रथ-बैठनि, वैसिय है उर दाम॥
जैसी हुतिं उठि तैसिय दौरीं छांड़ि सकल गृह-काम।
रोम पुलक, गद्‌गद भइं तिहिं छन सोचि अंग अभिराम॥
इतनी कहत आय गए ऊधो, रहीं ठगी तिहि ठाम।
सूरदास प्रभु ह्यां क्यों आवैं बंधे कुब्जा-रस स्याम॥

जोग ठगौरी[2] ब्रज न बिकैहै
यह ब्योपार तिहारो ऊधो! ऐसोई फिरि जैहै॥
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छांड़ि कै कटुक निंबोरी[3] को अपने मुख खैहै?
मूरी के पातन के केना[4] को मुक्ताहल दैहै।
सूरदास प्रभु गुनहि छांड़ि कै को निर्गुन निरबैहै?

1. तनिक 2. ठगने का सौदा 3. नीम का फल 4. सौदा, छोटा-मोटा साग।

आए जोग सिखावन पांड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टांड़े[1] ॥
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखैं ते रांड़े।
कहौ मधुप, कैसे समोयंगे एक म्यान दो खांड़े ॥
कहु षटपद, कैसे खैयतु है हाथिन के संग गांड़े[2]।
काको भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत मांड़े ॥
काहे को झाला[3] लै मिलवत कौन चोर तुम डांड़े[4]।
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हांड़े[5] ॥

ए अलि! कहा जोग में नीको?
तजि रसरीति नंदनंदन की सिखवत निर्गुन फीको ॥
देखत सुनत नाहिं कछु स्रवननि, ज्योति ज्योति करि ध्यावत।
सुंदर स्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत?
सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोइ कौतुक रस भूलैं।
अपनी भुजा ग्रीव पर मेलैं[6] गोपिन के सुख फूलैं ॥
लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि-मिलि कै घर बन खेली[7]।
अब तुम सूर खवावन आए जोग ज़हर की बेली ॥

हमरे कौन जोग ब्रत साध?
मृगत्वच, भस्म अधारि[8], जट को को इतनौ अवराधै?
जाकी कहूं थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बांध[9] को बांधे?
आसन पवन बिभूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गांठि को बांधै?

---

1. व्यापार का माल 2. गन्ने का कटा हुआ टुकड़ा 3. झल्ल, बकवास 4. दंड दिया, 5. धनिया, धान और कुम्हड़ा, 6. डालते थे, 7. खेल डाला, कुछ न समझा, 8. साधुओं की टेकने की लकड़ी, 9. आडम्बर।

हम तो दुहूं भांति फल पायो।
को ब्रजनाथ मिलैं तो नीको, नातरु जग जस गायो ॥
कहं वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघुजाती।
कह वै कमला के स्वामी संग मिल बैठीं इक पांती ॥
निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब सांच कहो धौं मुक्ति कौन की दासी?
जोग-कथा, पा लागों[1] ऊधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार[2] ॥

पूरनता इन नयनन पूरी।
तुम जो कहत स्रवननि सुनि समुझत,
ये याही दुख मरति बिसूरी[3] ॥
हरि अंतर्यामी सब जानत बुद्धि
बिचारत बचन समूरा[4]।
वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों
मनि पाय खवावत धूरी[5] ॥
रहु रे कुटिल, चपल, मधु, लम्पट,
कितव[6] सन्देस कहत कटु कूरी[7]।
कहं मुनिध्यान कहां ब्रजयुवती!
कैसे जात कुलिस करि चूरी ॥
देखु प्रगट सरिता, सागर, सर सीतल
सुभग स्वाद रुचि रूरी[8]।
सूर स्वातिजल बसै जिय चातक
चिता लागत सब झूरी[9]।

हमतें हरि कबहूं न उदास।
राति खवाय पिवाय अधररस,
क्यों बिसरत सो ब्रज को बास ॥

1. पर पड़ती हूं, 2. भस्म, राख, मिट्टी, 3. बिलखकर, 4. जड़-मूल से, 5. धूल, 6. धूर्त, छली,
7. निष्ठुर, क्रूर, 8. अच्छी, 9. नीरस।

तुमसों प्रेम कथा को कहिबो,
मनहुं काटिबो घास।
बहिरो तान-स्वाद कह जानै,
गूंगो बात - मिठास ॥
सुनुरी सखी बहुरि फिरि ऐहैं,
वे सुख बिबिध बिलास।
सूरदास ऊधो अब हमको,
भयो तेरहों मास ॥

तेरो बुरो न कऊ मानै।
रस की बात मधुर नीरस, सुनु, रसिक होत सो जानै ॥
दादुर बसै निकट कमलन के जन्म न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उड़न मन बांध्यो कहे सुनत नहिं कानै ॥
सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै[1]।
कायर बकै, लोह[2] तें भाजे, लरै जो सूर बखानै ॥

घर ही के बाढ़े[3] रावरे।
नाहिंन मीत बियोगबस परे अनबउगे[4] अलि बावरे!
मुख मरि जाय चरै नेहिं तिनुका सिंह को यहै स्वभाव रे।
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे जोग-ज़हर न खवाव, रे;
ऊधो हमहि सीख का दैहो? हरिबिनु अनत न ठांव रे!
सूरदास कहा लै कीजै थाही नदिया नाव रे ॥

स्याम मुख देखे ही परतीति।
जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान की रीति ॥
नाहिंन कछू सयान ज्ञान में हम यह कैसे मानैं॥
कहौ कहा कहिए या नभ को कैसे उर में आनैं ॥

---

1. तोड़ती हैं, 2. लोहा, हथियार, 3. अपने ही घर बढ़-बढ़कर बात करनेवाला, 4. सहोगे।

यह मन एक, एक वह मूरति भृंगकीट[1] सम माने।
सूर सपथ दै बूझत ऊधो यह ब्रज लोग सयाने ॥

लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि,
कैसे करिकै छूटत?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब
अंतरगति[2] यों लूटत ॥
चंचल चाल मनोहर चितवनि,
वह मुसुकानि मन्द धुन गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह
बिनोद गृह बन तें आवत ॥
चरन कमल की सपथ करति हौं,
यह संदेस मोहिं बिष सम लागत।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत
मोहन मूरति सोवत जागत ॥

अटपटि बात तिहारी ऊधो
सुनै सो ऐसी को है?
हम अहीरि अबला सठ, मधुकर!
तिन्हैं जोग कैसे सोहै?
बूचिहि[3] खुभी[4] आंधरी काजर,
नकटी पहिरै बेसरि[5]।
मुंडली पाटी पारन चाहै,
कोढ़ी अंगहि केसरि ॥

1. बिलनी नाम का कीड़ा, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह अन्य कीड़ों को पकड़कर उन्हें अपने रूप का कर लेता है, 2. चित्त की वृत्ति, मन, 3. कनफटी जिसका कान कटा हो, 4. कान में पहनने को एक गहना, लौग, 5. नाक में पहनने का एक गहना।

बहिरी सों पति मतो करै सो
उतर कौन पै पावै?
ऐसो न्याव है ताको ऊधो
जो हमैं जोग सिखावै ॥
जो तुम हमको लाए कृपा करि
सिर चढ़ाय हम लीन्हे।
सूरदास नरियर जो विष को
करहि बंदना कीन्हे ॥

बरु वै कुब्जा भलो कियो।
सुनि सुनि समाचार ऊधो
मो कछु सिरात हियो ॥
जाको गुन, गति, नाम, रूप,
हरि हार्यो, फिरि न दियो।
तिन अपनो मन हरत न जान्यो
हंसि हंसि लोग जियो ॥
सूर तनक चंदन चढ़ाय तन
ब्रजपति बस्य कियो।
और सकल नागरि नारिन को
दासी दांव लियो ॥

हरि काहे के अंतर्यामी?
जौ हरि मिलत नहीं यहि औसर,
अवधि बतावत लामी[1] ॥
अपनी चोप[2] जाय उठि बैठे
और निरस बेकामी[3]।
सो कह पीर पराई जानै
जो हरि गरुड़ागामी ॥
आई उधर प्रीति कलई सी

1. लम्बी 2. चाह, चाव 3. निष्काम।

जैसे खाटी आमी।
सूर इते पर अनख[1] मरति हैं,
ऊधो, पीवत मामी[2] ॥

बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे!
वह मथुरा काजर की कोठरि
जे आवहिं ते कारे ॥
तुम कारे, सुफलक सुत कारे,
कारे मधुप भंवारे।
तिनके संग अधिक छबि उपजत
कमलनैन मनिआरे[3] ॥
मानहु नील माट[4] तें काढ़े
लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी
सूर स्याम गुन न्यारे ॥

अपनो स्वारथ को सब कोऊ!
चुप करि रहौ, मधुप रस-लंपट!
तुम देखो अरु बोऊ ॥
औरौ कछू संदेस कहन को
कहि पठयो किन सोऊ।
लीन्हे फिरत जोग जुवतिन को
बड़े सयाने दोऊ ॥
तब तक मोहन रास खिलाई
जो पै ज्ञान हुतोऊ?
अब हमरे जिय बैठो
यह पद 'होनी हौउ सो होऊ' ॥
मिटि गयो मान परेखो[5] ऊधो

1. कुढ़न, 2. किसी बात को पी जाना, साफ़ इंकार करना, 3. सुहावना, रौनक, 4. मटका, मिट्टी का बरतन, 5. भरोसा।

हिरदय हतो सो होऊ।
सूरदास प्रभु गोकुलनायक
चित-चिन्ता अब खोऊ॥

तुम जो कहत संदेसो आनि।
कहा करौं वा नंदनंदन सों
होत नहीं हितहानि॥
जोग-जुगुति किहि काज हमारे
जदपि महा सुखखानि?
सने सनेह स्यामसुंदर के
हिलि मिली कै मन मानि॥
सोहत लोह परसि पारस
ज्यों सुबरन बारह बानि[1]।
पुनि वह चोप कहां चुंबक
ज्यों लटपटाय लपटानि॥
रूपरहित नीरासा निरगुन
निगमहु परत न जानि।
सूरजदास कौन विधि तासों
अब कीजै पहिचानि॥

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहि तिहारो
बिरहिनि बिरह-बिदुखी[2]?
कहिए कहा यहौ नहिं जानत
काहि जोग है जोग॥
पा लागों तुमहीं सो वा पुर
बसत बावरे लोग॥

1. चमकनेवाला खरा, 2. दुखी।

अंजन, अभरन, चीर, चारु बरु
नेकु आप तन कीजै।
दंड, कमंडल, भस्म अधारी
जो जुवतिन को दीजै ॥
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की
ऊधो वह ब्रत पायो।
कहै 'कृपानिधि हो कृपाल हो!
प्रेमै पढ़न पठायो ॥

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञानकथा हो ऊधो! मथुरा ही लै जाव ॥
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने बचन सुभाव।
या लागों, इन बातनि, रे अलि! उनहीं जाय रिझाव ॥
सुनि, प्रियसखा स्यामसुन्दर के जो पै जिय सति भाव।
हरिमुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव ॥
जो कोउ कोटि जतन करे, मधुकर, बिरहिनि और सुहाव?
सूरदास मीन को जल बिनु नाहिंन और उपाव ॥

अंखियां हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूपरसरांची ये बतियां सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी[1] ॥
अब इन जोग-संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक[2] वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी[2] ॥
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी[3] ॥

1. सन्तप्त हुई, 2. एक बार, 3. पत्ते का दोना।

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हंसि समुझाय, सौंह दै बूझति सांच, न हांसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी ॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गांसी[1]।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी ॥

ऊधो! मन माने की बात।
दाख छुहारा छाड़ि अमृत-फल विष-कीरा बिष खात ॥
जौ चकोर को दै कपूर कोउ तजि अंगार अघात?
मधुप करत घर कोरि[2] काठ में बन्धत कमल के पात ॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो दीपक सों लपटात।
सूरदास जाको मन जासों सोई ताहि सुहात ॥

यशोदा का वचन उद्धव-प्रति

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो ॥
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोई जोई मांगत सोइ सोइ देती करम करम करि न्याते ॥
तुम तौ टेव जानतिहिं ह्वै हौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन रोटी भावै ॥
अब यह सूर मोहिं निसिबासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलक-लड़ैते[3] लालन ह्वै हैं करत संकोच ॥

1. कपट की बात, 2. कुरेदकर, 3. दुलारे, लाड़ले।

यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखिकै मोहन के मुख-जोग ॥
प्रात-समय उठि माखन-रोटी को बिन मांगे दै है?
को मेरे बालक कुंवर कान्ह को छन-छन आगो लै है?
कहियो जाय पथिक! घर आवैं राम स्याम दोउ भैया।
सूर वहां कत होत दुखारी जिनके मो सी मैया ॥

जो पै राखति हौ पहिचानि।
तौ बारेक मेरे मोहन को मोहिं देहु दिखाई आनि ॥
तुम रानी बसुदेवगिरहिनी हम अहीर ब्रजवासी।
पठै देहु मेरो लाल लड़ैतो बारों ऐसी हांसी[1] ॥
भली करी कसादिक मारे अवसर-काज कियो।
अब इन गैयन कौन चरावै भरि-भरि लेत हियो ॥
खान, पान, परिधान, राजसुख केतोउ लाड़ लड़ावै।
तदपि सूर मेरो यह बालक माखन ही सचु[2] पावै ॥

1. ऐसी हंसी चूल्हे में जाए, 2. सुख।

कुब्जा-सन्देश

मो पै काहे को झुकति[1] ब्रजनारी?
काहू के भाग मों साझो नाहिन, हरि की कृपा नियारी॥
फलन मांझ जैसे करुइ तूमरि रहित जो घूरे डारी।
हाथ परी जब गुनी जनन के बाजति राग दुलारी॥
यह संदेस कुब्जा कहि पठयो अरु कीन्ही मनुहारी।
तन टेढ़ी सब कोऊ जानत, परसे भइ अधिकारी॥
हौं तो दासी कंसराय की, देखहु हृदय बिचारी।
सूर स्याम करुनाकर स्वामी अपने हाथ संवारी॥

उद्धव-गोपी संवाद

उद्धव वचन

हौं तुम पै ब्रजनाथ पठायो।
आतमज्ञान सिखावन आयो॥
आपुहिं पुरुष आपुही नारी।
आपुहि बानप्रस्थ ब्रतधारी॥
आपुहि पिता, आपुही माता।
आपुहि भगिनी, आपुहि भ्राता॥
आपुहि पंडित, आपुहि ज्ञानी।
आपुहि राजा, आपुहि रानी॥

1. टूटती हो, कोप करती हो।

आपुहि धरती, आपु अकासा।
आपुहि स्वामी, आपुहि दासा ॥
आपुहि ग्वाल, आपुही गाई।
आपुहि आप चरावन जाई ॥
आपुहि भंवर, आपुही फूल।
आतमज्ञान बिना जग भूल ॥
रंक राव दूजो नहिं कोय ।
आपुहि आप निरंजन सोय ॥
यहि प्रकार जाको मन लागै।
जरा मरन, जी तें भ्रम भागै ॥

गोपी वचन

सुनु ऊधो! ह्यां कौन सयानी?
तुम तौ महापुरुष बड़ज्ञानी ॥
जोगी होय सो जोगहि जानै।
नवधा भक्ति सदा मन मानै ॥
भाव-भगति हरिजन चित धारे।
ज्योति-रूप सिव सनक बिचारे ॥
तुम कह रचि रचि कहत सयानी[1]।
अबला हरि के रूप दिवानी ॥
जात[2]-पीर बंझा नहिं जानै।
बिनु देखे कैसे रुचि मानै ॥
फिरि फिरि कहे वहै सुधि आवै।
स्यामरूप बिन और न भावै ॥
जोग-समाधि जोति चित लावै।
परमानन्द परमपद पावै ॥
नवकिसोर को जबहिं निहारैं।
कोटि ज्योति वा छबि पै वारैं ॥

1. चतुराई, ज्ञान की बात, 2. बच्चा जनने की।

सजल मेघ घनस्याम सरीर।
रूप ठगी हलधर के बीर ॥
सिर श्रीखंड[1], कुण्डल, बनमाल।
क्यों बिसरैं वै नयन बिसाल?
मृगमद[2] तिलक अलक घुंघुरारे।
उन मोहन मन हरे हमारे ॥
भृकुटी बिकट, नासिका राजै।
अरुन अधर मुरली कल बाजै ॥
दाड़िम दसन-दमक दुति सोहै।
मृदु मुसुकानि मदन-मन मोहै ॥
चारु चिबुक, उर पर गजमोती।
दूरि करत उडुगन की जोती ॥
कंकन, किंकिनि, पदिक बिराजै।
चलत चरन कल नूपुर बाजै ॥
बन की धातु[3] चित्र तनु किये।
वह छबि चुभि जु रही हम हिये॥
पीत बसन छबि बरनि न जाई।
नखसिख सुन्दर कुंवर कन्हाई ॥
रूपरासि ग्वालन की संगी।
कब देखैं वह रूप त्रिभंगी ॥
जो तुम हित की बात सुनावौ।
मदनगोपालहिं क्यों न मिलाऔ?

उद्धव वचन

ताहि भजहु किन सबै सयानी?
खोजत जाहि महामुनि ज्ञानी ॥
जाके रूप-रेख कछु नाहीं।
नयन मूंदि चितवहु चित माहीं ॥

1. चंदन, 2. कस्तूरी, 3. गेरू।

हृदय-कमल में जोति बिराजै।
अनहद नाद निरन्तर बाजै ॥
इड़ा पिंगला सुखमन नारी[1]।
सून्य सहज में बसैं मुरारी ॥
मात पिता नहिं दारा भाई।
जल थल घट घट रहे समाई ॥
यहि प्रकार भव दुस्तर तरिहौ।
जोग-पंथ क्रम-क्रम अनुसरिहौ ॥

गोपी वचन

यह मधुकर! मुख मूंदहु जाई।
हमरे चित बित[2] हरि जदुराई ॥
ब्रजबासिनि गोपाल-उपासी।
ब्रह्मज्ञान सुनि आवै हांसी ॥
अब लौं जोग कबहुं नहिं आयो।
मामो कुबजा-रूपहि पायो ॥
खोलि सुगाहक पाय दिखायो।
माधव मधुकर-हाथ पठायो ॥
अबला ठगी सकल ब्रज हेरी।
सो ठग ठग्यो कंस की चेरी ॥
राम - जनम - तपसी जदुराई।
तिहि फल बधू कूबरी पाई ॥
सीता-बिरह बहुत दुख पायो।
अब कुबजा मिलि हियो सिरायो[3] ॥
ज्ञान निरास कहा लै कीजै।
जोग-मोट दासी-सिर दीजै?

1. नाड़ी, 2. धन, 3. ठंडा हुआ।

उद्धव वचन

वह अच्युत अबिगत अबिनासी।
त्रिगुन-रहित बपु धरे न दासी ॥
हे गोपी! सुनु बात हमारी।
है वह सून्य सुनहु ब्रजनारी ॥
नहिं दासी ठकुराइनि कोई।
जहं देखहु तहं ब्रह्महि सोई ॥
आपुहि औरहिं ब्रह्महिं जानै।
ब्रह्म बिना दूसर नहिं मानै ॥

गोपी वचन

बार बार ये बचन निवारो ॥
भक्ति-बिरोधी ज्ञान तुम्हारो।
होत कहा उपदेसे तेरे?
नयन सुबस नाहीं, अलि, मेरे ॥
हरिपथ जोवत निमिष न लागै।
कृस्न-बियोगिनि निसिदिन जागै ॥
नंदनंदन के देखे जीवैं।
रुचि वह रूप, पवन नहिं पीवैं ॥
जब हरि आवैं तब सुख पावैं।
मोहन मूरति निरखि सिरावैं ॥
दुसह बचन अलि हमहिं न भावैं।
जोगकथा ओढ़ैं कि डसावैं[1] ॥

1. लेकर क्या करें।

उद्धव वचन

ऊधो कहैं, 'धन्य ब्रजबाल।
जिनके सर्बस मदनगोपाल ॥
वह मत त्याग्यो, यह मजि आई।
तुम्हरे दरस भगति मैं पाई ॥
तुम मम गुरु मैं दास तुम्हारो।
भगति सुनाय जगति निस्तारो' ॥
'भ्रमरगीत' जे सुनैं सुनावैं।
प्रेमभक्ति सो प्रानी पावैं ॥
सूरदास गोपी बड़ भागी।
हरिदरसन की ठगौरी लागी ॥

मथुरा लौटने पर उद्धव का वचन

कृष्ण-प्रति

माधव जू! मैं अति सचु[1] पायो।
अपने जानि संदेस-ब्याज करि ब्रजजन मिलन पठायो?
छमा कहौ तौ करौं बीनती जो उत देखिहौं आयो।
श्रीमुख ज्ञानपंथ जो उचर्‌यो तिन पै कछु न सुहायो॥
सकल निगम-सिद्धान्त जन्म-स्रम[2] स्यामा[3] सहज सुनायो।
नहिं स्रुति, सेष, महेस, प्रजापति जो रस गोपिन गायो॥
कटुक कथा लागी मोहिं अपनी, वा रस-सिन्धु समायो।
उत तुम देखे और भांति मैं सकल तृषाहिं बुझायो॥
तुम्हारी अकथ कथा तुम जानो हम जन नाहिं बसायो।
सूरदास सुंदर पद निरखत नयनन नीर बहायो॥

कृष्ण-वचन उद्धव-प्रति

ऊधो! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता[4] की सुन्दरि कगरी[5] अरु कुंजन की छाहीं॥
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत, तनु नाहीं[6]॥
अनगन[7] भांति करी बहु लीला जसुदा नन्द निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन है, यह कहि-कहि पछिताहीं॥

---

1. सुख, 2. जन्म-भर श्रम करने से साध्य, 3. राधा, 4. सूर्य की कन्या यमुना, 5. किनारा, 6. तन नहीं रह जाता अर्थात् उसकी सुध भूल जाती है, 7. अनेक।

अनुक्रमणिका

जीवन-कथा 7

संकलन : सूरदास के भजन 25

मैया मोरी मैं नहिं... 27
मधुकर स्याम हमारे चोर... 28
अंखियां हरि दरसन... 29
मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी 30
प्रभु मेरे औगुन... 31
निसिदिन बरसत नैन... 32
मैया मोहि दाऊ बहुत... 33
नैना भये अनाथ हमारे... 34
जो हम भले बुरे... 35
अब मैं नाच्यो बहुत... 36
अब की टेक हमारी... 37
हम भगतन के भगत... 38
रे मन मूरख... 39
मो सम कौन कुटिल... 40
सुने री मैंने निर्बल... 41
सब दिन होत न एक... 42
नाथ मोहे अब की बेर... 43
तुम मेरी राखो लाज... 44
जा दिन मन पंछी... 45

दीनानाथ अब बार तुम्हारी 46
सबसों ऊंची प्रेम सगाई... 47
हरि बिन को राखे... 48
हरि सो मीत न देखौ... 49
हरि बिन कौन दरिद्र... 50
तुम हरि सांकरे के साथी... 51
मैया री मोहि माखन... 52
सोई रसना जो हरि... 53
रे मन जन्म... 54
हरि हौं बड़ी... 55
जागिए ब्रजराज... 56
सबै दिन गए विषय... 57
बन तै आवत धेनु... 58
खेलन दूरि जात... 59
चोरी करत कान्ह... 60
मैया, मैं तो चन्द खिलौना... 61
किलकत कान्ह... 62
सिखबत चलन जसौदा... 63
कान्ह चलत पग... 64
कहन लागे मोहन... 65
रुदन करति वृषभानु... 66
मैं कैसैं रस रासहिं... 67
देखि सीख ब्रज... 68
अधर-रस मुरली... 69
सुनहु री मुरली... 70
सजनी स्याम सदाई ऐसे... 71
अधर-रस मुरली... 72
नटवर-वेष धरे... 73
घट भरि दियौ... 74
यह कमरी कमरी... 75

को माता को पिता...	76
माखन दधि हरि खात...	77
राधा सौं माखन...	78
कंस-हेतु हरि जन्म...	79
यह महिमा येई...	80
या घर में कोउ है...	81
पलक ओट नहिं होत...	82
दधि-मटुकी सिर लिए...	83
हरि देखैं बिनु कल न...	84
तब नागरि मन हरष...	85
सुन राधे तोहिं...	86
उपमा हरि-तनु देखि...	87
ता दिन तैं हरि...	88
स्याम करत हैं मन की...	89
भींजत कुंजनि मैं...	90
कबहुं स्याम जमुना...	91
नैना हाथ न मेरै...	92
नैना नैननि मांझ...	93
जबहीं रथ अक्रूर...	94
जै जै धुनि तिहुं...	95
हों तो माई मथुरा...	96
सखी इन नैननि तैं...	97
हौं इक नई बात...	98
जसोदा हरि पालनैं...	99
नैंकु गोपालहिं मोकौं...	100
हरि किलकत जसुदा...	101
सोभित कर नवनीत...	102
मैया हौं न चरैहों...	103
उरग-नारि सब कहतिं...	104
जब हरि मुरली...	105

मुरली तऊ गुपालहिं... 106
बूझत स्याम कौन तू... 107
खेलन कैं मिस... 108

भ्रमर-गीत 109

श्रीकृष्ण का वचन उद्धव-प्रति 111
पहिले करि परनाम... 111
उद्धव! बेगि ही ब्रज... 111
पथिक! संदेसौ कहियो... 112
नीके रहियो जसुमति... 112

उद्धव-प्रति कुब्जा के वाक्य 112
सुनियो एक संदेसो... 112

उद्धव का ब्रज में आना 113
कोऊ आवत है तन... 113
जोग ठगौरी ब्रज... 113
आए जोग सिखावन... 114
ए अलि! कहा जोग... 114
हमरे कौन जोग ब्रत... 114
हम तो दुहूं भांति... 115
पूरनता इन नयनन... 115
हमतें हरि कबहूं... 115
तेरो बुरो न... 116
घर ही के बाढ़े रावरे... 116
स्याम मुख देखे ही... 116
लरिकाई को प्रेम... 117
अटपटि बात तिहारी... 117
बरु वै कुब्जा भलो... 118

हरि काहे के अंतर्यामी...	118
बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे...	119
अपनो स्वारथ को सब	119
तुम जो कहत संदेसो...	120
हम तो कान्ह केलि...	120
हमको हरि की कथा...	121
अंखियां हरि दरसन...	121
निर्गुन कौन देस को...	122
ऊधो! मन माने की...	122
यशोदा का वचन उद्धव-प्रति	123
संदेसो देवकी सों कहियो	122
यद्यपि मन समुझावत...	123
जो पै राखति हौ...	123
कुब्जा संदेश	124
मो पै काहे को...	124
उद्धव-गोपी संवाद	124
उद्धव वचन : हौं तुम पै ब्रजनाथ...	124
गोपी वचन : सुनु ऊधो! ह्यां...	125
उद्धव वचन : ताहि भजहु किन...	126
गोपी वचन : यह मधुकर! मुख...	127
उद्धव वचन : वह अच्युत अबिगत अबिनासी...	128
गोपी वचन : बार बार ये बचन निवारो...	128
उद्धव-वचन : ऊधो कहैं, धन्य ब्रजबाल	129
मथुरा लौटने पर उद्धव का वचन	130
कृष्ण-प्रति : माधव जू! मैं अति...	130
कृष्ण-वचन उद्धव-प्रति : ऊधो! मोहि ब्रज...	130

फ़ुल सर्कल और हिन्द पॉकेट बुक्स आत्म-विकास, धर्म, अध्यात्म, स्वास्थ्य आदि आन्तरिक और बाहरी जीवन से सम्बन्धित विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। हमारा मुख्य उद्देश्य एक स्वस्थ और शान्तिपूर्ण विश्व की संरचना में अपनी भूमिका को सकारात्मक ढंग से निभाना है। पुस्तकें अनमोल होती हैं और इनका कोई सानी भी नहीं होता। कहते भी हैं कि हर मर्ज की दवा पुस्तकों के पास होती है।

हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि पुस्तकों के बारे में ज़्यादा-से-ज़्यादा जानकारियां पाठकों को उपलब्ध हों। इन प्रयासों की शृंखला की नई कड़ी है इस पुस्तक में संलग्न कार्ड। जिसे भरकर हमारे पास भेजने पर हम आपको आपकी रुचि की पुस्तकों के बारे में जानकारी देंगे। और अपनी घरेलू पत्रिका 'साहित्य संगम' भी भेजेंगे, जो आपको हमारे नए प्रकाशनों की जानकारी देगा।

FULL CIRCLE

फ़ुल सर्कल / हिन्द पॉकेट बुक्स

जे-40, जोरबाग़ लेन, नई दिल्ली-110003

फ़ोन : 24620063, 55654197 फैक्स : 24645795

ई-मेल : gbp@del2.vsnl.net.in @ fullcircle@vsnl.com

Warehouse & Sales Office

B-13, Sector-81, Phase-II, NOIDA (UP)-201305

Tel: 55654198, 95120-3093992,52563983

यह पुस्तक आपको कैसी लगी?
यदि पसन्द आई तो

घरेलू लाइब्रेरी योजना

के सदस्य बनिए और घर बैठे अपनी मनपसन्द पुस्तकें प्राप्त कीजिए। सूचीपत्र एवं नियमावली के लिए हमें लिखें :

हिन्द पॉकेट बुक्स

जे-40, जोर बाग़ लेन, नई दिल्ली-110003

Santa Clara County
LIBRARY

Renewals:
(800) 471-0991
www.santaclaracountylib.org

सूरदास

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे,
मधुवन मोहिं पठायो।

हड़हड़ाती हुई तूफ़ानी नदी को आधी रात में पार करके कौड़िया सर्प को रस्सी समझकर अपनी प्रेमिका तक पहुंचनेवाले बिल्वमंगल को उसी के द्वारा धकिया दिया गया, तो मंगल का लुनाई के प्रति अनन्य प्रेम कन्हाई की अनन्य भक्ति में परिवर्तित हो गया और बिल्वमंगल सूरदास हो गए।

इन्हीं महाकवि सूरदास की मार्मिक जीवन-कथा के साथ-साथ इस पुस्तक में उनके भजनों तथा भ्रमर-गीतों को शामिल किया गया है।

भक्ति-रस और भाव से शराबोर इस पुस्तक का सम्पादन किया है सुप्रसिद्ध लेखक सुदर्शन चोपड़ा ने।

SANTA CLARA COUNTY LIBRARY
33305200165110

हिन्द पॉकेट बुक्स

ISBN 8
AHW HPB